ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाका आठवाँ ग्रन्थ

बनारसके व्यवसायी

लेखक

बाबू भगवतीप्रसाद सिंह

श्रीकाशी

ज्ञानमण्डल कार्य्यालय

१९७७

प्रकाशक
प्रो० रामदास गौड, व्यवस्थापक
ज्ञानमण्डल कार्य्यालय, काशी
[१ सं० २०००—वि० १९७७]

{ मूल्य अजिल्द
{ बोर्ड कवर

मुद्रक—गणपति कृष्ण गुर्जर,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबड़, बनारस।
८८—२१।

बनारसके व्यवसायी

सम्पादकीय वक्तव्य

बाबू भगवतीप्रसादसिंहने बनारसके भिन्न भिन्न व्यवसाय-वालोंमें घूम घूम कर उनके वृत्तान्त संग्रह किये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह संग्रह अधिक विस्तारसे हो सकता था। परन्तु हमारा विचार है कि इस पुस्तकको देख कर अन्य व्यवसाय-केन्द्रोंसे अभिज्ञ हिन्दी लेखक वहाँके व्यवसायियोंका वर्णन भी करें। इस पुस्तिकाको पढ़कर अर्थशास्त्रियोंको यह विचार करनेकी सामग्री मिल जायगी कि पाश्चात्यदेशोंकी यान्त्रिक विकटताके न होते हुए भी स्वाभाविक श्रम-विभाग भारतीय व्यवसायोंमें बहुत कालसे चला आ रहा है और श्रमजीवियोंकी संख्या हमारे देशमें इतनी है कि यदि हम अपने देशके पुराने आदर्श जीवनका पुनरुद्धार करें तो अब भी हम,—कुछ परिश्रम अधिक करके और स्वराज्यके सुभीतों-से भविष्यमें लाभ उठाते हुए—पाश्चात्य संसारके यन्त्रोंका मुकाबला करनेमें समर्थ हैं।

हमें आशा है कि अन्य व्यवसाय-केन्द्रोंके हिन्दी लेखक भी इस विषयकी ओर ध्यान देंगे।

श्रीकाशी
वसन्तोत्सव १९७७

रामदास गौड़

विषय सूची

—:o#o:—

बनारसके व्यवसायी

१.

बनारसी काम बनानेवाले

काशीमें बनारसी कामका व्यापार सबसे प्रसिद्ध है। हिन्दुस्तान भरमें बनारसी साड़ी दुपट्टे इत्यादिकी माँग रहती है। यों तो संयुक्त प्रान्त भरमें हाथसे बिननेका काम अभी भी बहुतायतसे होता है पर एक शहर अथवा एक ज़िलेमें इतने बिननेवाले कम होंगे जितने इस व्यवसायके द्वारा निर्वाह करनेवाले इस शहरमें हैं। बिननेका काम यहाँ जुलाहोंके हाथमें है जो जातिके मुसलमान हैं, जिनकी संख्या लगभग दस हज़ारसे कम नहीं होगी। इस संख्यामेंसे अधिकांश ऐसी गिरी दशामें हैं कि जिसका पूर्ण ब्योरा लिखना अत्यावश्यक प्रतीत होता है। इनकी दशा बड़ी करुणाजनक और हृदय-विदारक है।

इस नगरमें जुलाहोंकी बस्ती दो विभागोंमें बँटी हुई है जिन्हें पुरे या महल्ले कहते हैं। प्रत्येक पुरेमें एक सरदार होता है। इस पदकी नियुक्ति किसी सार्वजनिक सम्मतिसे नहीं होती किन्तु वंश परम्परासे चली आती है। इस कारण यदि किसी पुरेका सरदार उस पदके अयोग्य भी हो तो भी उसे

लोग हटाकर किसी दूसरे योग्य व्यक्तिको नियुक्त करनेमें समर्थ नहीं होते। सम्पूर्ण ५२ पुरोंके तीन मुख्य सरदार हैं।

प्रत्येक पुरोंमें छोटी छोटी पञ्चायतें हैं। उनमें स्थायी कोष कुछ भी नहीं रहता अतः वे बालकोंकी शिक्षा इत्यादिका कुछ भी प्रबन्ध नहीं करती। परन्तु जब कोई व्यक्ति अत्यन्त असहाय अवस्थामें मर जाता है तब पंचायत चन्दा करके उसका अन्तिम क्रियाकर्म करा देती है। अन्यथा धार्मिक प्रथाओंके विचारके लिए उसकी बैठकें होती हैं।

इन पुरों या महल्लोंमें चार पुरे औरोंकी अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध हैं। लल्लापुरा, आदमपुरा, अलईपुरा और मदनपुरा। पहले दो महल्लोंमें साधारण मज़दूरीसे पेट पालनेवाले जुलाहे रहते हैं जिनमें शिक्षाका बिलकुल अभाव है और साथ ही साथ शिष्टाचार और सदाचारकी मात्रा भी कम पाई जाती है। अलईपुरा और मदनपुरामें कुछ अमीर और भारी व्यापारी भी रहते हैं और उनके रहन सहनमें सभ्यता अधिक पाई जाती है।

जुलाहोंमें बड़े व्यापारियोंकी संख्या बहुत ही कम है यह संख्या लगभग रुपएमें एक आना कही जा सकती है। इनकी आमदनी ५० रुपये मासिकसे अधिक होती है और इनमें बहुत कोठियोंके मालिक हैं। ये माल तय्यार करवाकर रखते हैं और बाहर भेजते हैं। शहरमें बिक्रीका काम ये लोग नहीं करते। इनका माल बम्बई, अहमदाबाद, मद्रास आदि स्थानोंपर जाता है जहाँ बनारसी कपड़ोंकी अधिक माँग होती है। कलकत्तेकी तरफ बनारसी कपड़ोंकी खपत कम है क्योंकि उधर सस्ते कपड़ोंका और मुरशिदाबाद, मालदा आदिके रेशमी कपड़ोंका रिवाज़ है और जो कुछ थोड़ा बहुत माल जाता भी

वह दूसरे व्यापारियोंके द्वारा भेजा जाता है जिसका उल्लेख आगे किया जावेगा। जाड़ेके दिनोंमें गढ़वालके उत्तरसे भूटानी और तिब्बती सौदागर ग्यानिमा मण्डी, गरतोक आदिके बाज़ारोंसे आते हैं और बहुतसे बनारसी कपड़े दलालोंकी मारफ़त मुसल्मान व्यापारियोंसे ले जाते हैं। इस सौदेमें दलालोंकी मुट्ठी अच्छी तरह गरम हुआ करती है।

इन मुसल्मान कोठीदारोंके अतिरिक्त बड़े व्यापारी कुञ्ज-गलीके महाजन लोग ही हैं। इनमें पंजाबी लोग जो प्रायः अमृतसर से आये हैं, और बनारसके खत्री लोग भी शामिल हैं। ये लोग शहर में फुटकर माल बेंचते हैं और भारतव के प्रायः सब देशी रजवाड़ोंमें बनारसी कपड़े, चाँदी सोने और जवाहिरातके आभूषण, चाँदी सोनेके हौदे कुरसी आदि पहुँचाते हैं। कलकत्तेमें और उत्तरीय भारतके बड़े बड़े शहरोंमें भी ये ही लोग माल भेजा करते हैं।

जुलाहोंमें पहली श्रेणीसे नीचेके छोटे व्यापारी या कारीगर गृहस्थ कहे जाते हैं। इनमें साधारण हैसियतके लोग मुसल्मान कोठीवालोंसे या कुञ्जगलीके महाजनोंसे पेशगी रुपया और कच्चा बाना लेते हैं और उन्हें माल तैयार करके देते हैं। इनको मज़दूरी थान या गज़के हिसाबसे या साड़ी या डुपट्टे-की नापसे दी जाती है। इनमेंसे अधिकांश ५० रुपया महीनाके लगभग पैदाकर लेते हैं और वे छोटे कारीगरोंको नौकर रख-कर भी उनसे अपने घरपर माल तैयार करा लेते हैं।

इन दोनों विभागोंसे बचे हुए लोग कारीगर या मजदूर हैं। इनकी संख्या कुल बनारसी काम बनानेवालोंमें आधेसे भी अधिक है। ये लोग दैनिक, साप्ताहिक या मासिक वेतन पाते

हैं। और यथार्थमें इन्हींकी अवस्थाका हम पाठकोंको परिचय कराना चाहते हैं।

ये लोग भी गृहस्थ कहे जाते हैं और इनमें कार्यविभाग भी बँटा हुआ है। इस प्रकारके कारीगर डोरिया कहलाते हैं। इनका काम बिनते समय ऊपरसे बँधी हुई डोरियों या सूतको उठाने और घुमानेका होता है। इस डोरा या सूतके उठानेसे किनारेपर कुछ जगह खाली हो जाती है जिसमें किनारा जो रेशमी या कलाबत्तूका होता है बिन दिया जाता है। इस कामके करनेवाले प्रायः लड़के होते हैं जिनकी मज़दूरी १ रुपयेसे लेकर ५ रुपये महीनेतक होती है।

दूसरे कारीगर बिननेवाले होते हैं जो किनारा बिनते हैं या ख़ास कपड़ेको बिनते हैं। ये लोग पहले डोरियेका काम कर चुके होते हैं और उसी श्रेणीसे इस कामपर लाये जाते हैं। इनकी मासिक वृत्ति ५ रुपयेसे ८ रुपयेतक होती है।

इन लोगोंको १० घण्टेसे ऊपर काम करना पड़ता है। ये लोग प्रातःकाल ६ बजे कामपर पहुँच जाते हैं और उस समयसे लेकर १२ बजेतक लगे रहते हैं। फिर २ बजेसे ६ बजे संध्या समयतक काम करना पड़ता है।

अब ज़रा इस बातपर भी ध्यान देना चाहिए कि ये लोग कामपर कैसे नौकर रक्खे जाते हैं। पहले तो जो लोग अपने लड़केको किसीके यहाँ डोरिया बनाकर नौकर रखना चाहते हैं वे ग़रीब होते हैं। यदि लड़केका बाप जीवित होता है तो वह किसी गृहस्थ या महाजनसे पेशगी रुपया और कच्चा माल लेकर अपने घरपर अपनी स्त्री, लड़के और लड़कीके साथ काम कर सकता है। पर यदि केवल माता ही जीवित हो और उसके एक लड़का हो तो वह उस बालकको जब कि

वह केवल सात ही वर्षका होता है किसी गृहस्थके यहाँ ले जाती है और वहाँ एक रुपये महीनेपर नौकर रखवा देती। नौकर रखनेके पहले गृहस्थ लड़केकी माँसे सरकारी आठ आनेके काग़ज़पर वह अपनी इच्छानुसार समय २ पर जो तहरीर चाहता है लिखवा लेता है। नौकर रख लेनेपर वह लड़केकी माँको लड़केके ऊपर पेशगी रुपया देना शुरू करता है। इस पेशगीको बोलचालमें "अकता" कहते हैं और इसकी मात्रा दो ढाई सौ रुपयेतक होती है। लड़केकी माँ अकालके समय अथवा ग़मी या विवाहके समय विवश होकर अवश्य 'अकता' लेती है और ज्यों ज्यों 'अकता' बढ़ता जाता है त्यों त्यों बेचारा बालक दासताके बन्धनोंमें जकड़ा जाता है। मान लिया जाय कि लड़केको कहीं अधिक मज़दूरी मिलनेकी आशा है, पर वह विना अपना पूरा 'अकता' चुकाये अपने पहले मालिकको नहीं छोड़ सकता। यदि कोई उद्धत बालक नौकरी छोड़कर भाग जाय तो उस अवस्थामें उसका मालिक उसकी मातासे लिये हुए सादे सरकारी काग़ज़पर अपनी इच्छानुसार मज़मून लिखवा कर दावा कर देता है और लड़केको ऋणी होनेके लिए गिरफ़ार करवा देता है। माता हमेशा इतनी ग़रीब रहती है कि वह कभी इतनी समर्थ नहीं होती कि चार पाँच रुपये महीनेमेंसे कुछ बचाकर 'अकता' चुका कर अपने बच्चेको गुलामीके चंगुलसे छुड़ाकर स्वतन्त्रतासे नौकरी या व्यवसायमें लगा सके।

कभी कभी ऐसा होता है कि एक गृहस्थ दूसरे गृहस्थका 'अकता' चुकाकर उससे एक या अधिक कारीगर ले लेता है। इस प्रकार जन्मभरकी कैद हो जाती है। रोज़ मालिकके

यहाँ १० घण्टेसे अधिक काम करना पड़ता है और मजदूरी-की हद भी आठ रुपयेतक होती है। इस स्थितिमें कोई भी कारीगर मालिकके कामके सिवाय और कोई स्वतन्त्र काम करके कुछ नहीं कमा सकता। इसका उसे अवसर ही नहीं मिलता। हाँ यदि इस बन्धनसे मुक्त होनेका कोई उपाय है तो केवल एक है। वह यह है कि यदि किसीके तीन या चार लड़के हों तो वह छोटोंपर 'अकता' लेकर किसी एक बड़े लड़केका ऋण चुकाकर उसे मुक्त कर दे। इसके बाद वह सौ पचास रुपये लगाकर अपना एक करघा चलाने लगे और अपने छोटे भाइयोंको मुक्त करनेकी तदबीर करे।

हम लोग फ़ीज़ी आदिकी शर्तबन्दी कुली प्रथापर तो इतना आन्दोलन करते हैं पर अपने घरोंमें जो गुलामीकी प्रथा प्रचलित है उसपर ध्यान ही नहीं देते। जैसा कि १० वर्ष हुए महात्मा गोखलेने लाहौरमें अपने व्याख्यानमें कहा था कि हम लोगोंको देशके भीतरकी गुलामी दूर करनेका उपाय पहले सोचना चाहिए।

अब हम बनारसी कारीगरीके मुख्य विभागोंपर विचार करेंगे और उनकी वर्तमान स्थितिपर भी दृष्टि डालेंगे। बनारसी काम मुख्य तीन विभागोंमें विभक्त हो सकते हैं:—

(१) साड़ी, दुपट्टे।
(२) पीताम्बर, काशी-सिल्क।
(२) कमख़्वाब और ज़रदोज़ी।

इन तीनोंमें साड़ी दुपट्टोंका बनाना सबसे अधिक होता है। काशीमें आनेवाले यात्री लोग इन्हें अधिकतासे ख़रीदते हैं और विवाह और तेहवारोंपर ये लेन देनमें भी काम आते हैं इस सम्बन्धमें यह कहना असङ्गत न होगा कि मुसलमानों-

में इन चीज़ोंकी बिलकुल माँग नहीं। एक तो इस्लाम धर्ममें केवल रेशमी कपड़ा पहनना मना है क्योंकि रेशमी कीड़े-का बना हुआ कपड़ा होता है इसलिये ये लोग रेशममें सूत या ऊन मिला हुआ पहनते हैं। उनके लिए मशरू वग़ैरह कपड़े बनते हैं जिनमें ताना एक चीज़का होता है और बाना दूसरी चीज़ का। दूसरा, इन लोगोंका पहनावा दूसरे तरज़का होता है। साड़ी डुपट्टोंके लिए रेशम मुरशिदाबाद, राजशाही और मालदासे बहुत आता है, आजकल चीन और जापान-से भी बहुतसा रेशम बम्बईद्वारा मँगाया जाता है। कहा जाता है कि ज़िला मिर्जापुरके दक्षिणमें सोननदीके जंगलोंमें अच्छे रेशमके कीड़े पाये जाते हैं। जिनको जमा करके गाँव-वाले अहरोरामें लाते हैं और वहाँके पटवोंके हाथ बेंच जाते हैं। ये पटवे नानकपन्थी धर्मके अनुयायी हैं और इनकी अहरोरामें अच्छी बस्ती है। ये लोग रेशमको साफ़ करके मुरशिदाबाद आदि स्थानोंपर भेजते हैं और वहाँसे घूमकर वह इस शहरमें आता है। अहरोरासे कुछ घटिया रेशम काशी-सिल्कके वास्ते मँगाया जाता है। यदि बढ़िया रेशम भी यहीं-से ख़रीद लिया जाय तो सम्भवतः कुछ सस्ता पड़े।

बुने जानेके पहले रेशम रंगा जाता है। इस काममें बहुतसे रंगनेवालोंका गुज़र होता है। पर आजकल देशी रंगोंका लोपसा हो गया है और बाज़ारू बुकनी काममें लाई जाती है जिससे बनस्पतिके रंगके समान पक्का रंग नहीं होता। इससे एक तो रंग कच्चा होनेसे व्यापारमें धक्का लगनेका डर है। दूसरे रंगरेजोंका खर्च भी अधिक हो जाता है।

साड़ी डुपट्टोंकी तरज़में एक बात और विचारणीय है। पुराने ढङ्गके बेलबूटे जो सदियों पहले पसन्द किये जाते थे वे

ही आजकल भी बनाये जाते हैं। आजकलकी पसन्दके अनुसार नये ढङ्गका कहीं नाम भी नहीं। बेलबूटोंको बनानेका काम मुसव्वरोंके हाथ में है। पहले तो नक़्शे काग़ज़पर खींचे जाते हैं तब उन्हें करघेपर डोरियाँ बाँध कर सजाना पड़ता है। करघेपर चढ़ानेमें बड़ी मेहनत पड़ती है और मज़दूरी भी बहुत लगती है। पर आजकल कोई भी कला-कौशलकी उन्नतिके ध्यानसे अधिक व्यय सह कर नये ढङ्गका नहीं बनवाता जिससे इस प्रकारके कपड़ोंकी रिवाज कम हो जानेका भय है। हाँ आजकल एक आध व्यापारी जापानी बेलबूटोंकी नक़ल करवा रहे हैं, पर यह विशेष रुचिकर नहीं।

इन कामोंके अतिरिक्त पोती देना या माड़ी करना और कुन्दी करना ये काम भी इस व्यवसायके साथ हैं। ये सब काम प्रायः जुलाहोंके ही हाथ में हैं। इसमें मज़दूरी काम पूरा करनेपर मिलती हैं और हद्द आठ आने रोज़ तक साधारणतः होती है।

साड़ी दुपट्टेके बाद काशी-सिल्कका नम्बर आता है। इसके लिए रेशम प्रायः इटलीसे आता है। जिसे शाप या चाप रेशम कहते हैं। भारतसे बहुतसे टसर और रेशमके कीड़े (कोकुन) बाहर भेजे जाते हैं और वहाँसे साफ़ करके फिर महँगे दामोंपर मँगाये जाते हैं। क्या ही अच्छा होता कि बनारसमें जहाँ इतनी रेशमकी खपत है एक रेशम तैयार करनेका कारख़ाना खोल दिया जाता। इस कपड़ेमें भी पूर्ववत् मज़दूरी मिलती है।

कमख़्वाब और ज़रदोज़ीका काम बड़ी मेहनतका है और इसमें मज़दूरी भी कुछ अधिक मिलती है। इस काममें कलाबत्तू आदिका काम बहुत पड़ता है इसका व्यापार काशीमें

अच्छा होता है। इस व्यापारका वर्णन आगे चलकर अच्छी तरह किया जायगा। ज़रदोज़ीका काम सबसे अधिक टोपियों-पर होता है जिनकी माँग बहुत रहती है। इस काममें मज़-दूरी अच्छी मिलती है। और काम करनेवाले पूर्ववत् मुस-ल्मान ही हैं।

अब इस व्यवसायके ग़रीब लोगोंकी आर्थिक दशापर ध्यान देना चाहिए। कोठीवाले महाजनों और नौकरोंको रखकर काम करनेवाले गृहस्थोंकी दशाके विषयमें लिखनेकी कोई आव-श्यकता नहीं, क्योंकि इन लोगोंको अच्छी आमदनी होती है और इनमें बहुतसे धनी मकानदार हैं। शोचनीय दशा केवल मज़दूरीपर बिननेवालोंकी और ग़रीब विधवाओंकी है। इस श्रेणीके मज़दूरोंकी आमदनी लगभग चार आने रोज़ पड़ जाती है। पर इनकी दशा ऐसी होती है कि यदि एक दिन काम न मिले तो भूखों मरें। इन लोगोंको काम परसे साल-भरमें कभी छुट्टी नहीं मिलती। ईद आदि तेहवारोंपर जब कि कारख़ाने बन्द रहते हैं इनको छुट्टीके दिनोंकी कुछ भी मज़दूरी नहीं मिलती। यदि दुर्भाग्यवश कोई कारीगर बीमार पड़ गया तब भी उसकी मज़दूरी कट जाती है। तिसपरसे इनमें एक दुर्गुण यह है कि ये लोग भविष्यतका ध्यान बहुत ही कम रखते हैं। यदि इन्हे संयोगवश कुछ रुपया अधिक मिला तो उसे झटसे सैलसपाटे या कपड़े लत्तेमें उड़ा देते हैं। ईदके तेहवारपर यदि इनके पास रुपया हुआ तो ये बड़े मूल्यवान कपड़ेतक ख़रीद बैठते हैं और इस बातका इन्हें ध्यान भी नहीं आता कि कुछ दिन बाद यदि वे बीमार पड़ें या अकाल पड़े तो क्या खायँगे।

इन लोगोंकी स्त्रियाँ भी कुछ काम करती हैं पर इन्हें बहुत

कम मज़दूरी मिलती है। स्त्रियाँ परदानशीन होती हैं इस कारण घरपर ही काम करती हैं। ये रेशमको रँगकर सुखाती हैं और उसे सुलझाकर एक गरारीपर चढ़ाती हैं। इसके अतिरिक्त ये रेशमको खारती या बँटती हैं। इन सब कामोंमें इनको दो एक आने मिल जाते हैं। कुछ घरोंमें यदि छोटा मोटा करघा हुआ तो पुरुष, स्त्री और लड़कियाँ सबके सब मिलकर बिननेका काम करते हैं।

भोजन इन लोगोंका बहुत ही सादा होता है और प्रायः एक वक्त मिलता है। बहुतसे लोगोंका यह ख्याल है कि सब मुसल्मान रोज़ मांस खाते हैं और कुछ लोग यह विचार करते हैं कि गाय या भैंसका गोश्त बहुत अच्छा होता है, इसी वास्ते इन जानवरोंकी कुरबानी की जाती है। परन्तु यह भ्रम-मात्र है। गाय और भैंसका मांस दो आने सेरके हिसाबसे बिकता है और इसे अच्छे लोग बहुत ही कम खाते हैं क्योंकि यह बड़ा हानिकारक होता है। इससे दाँत ख़राब हो जाते हैं, पाचनशक्ति क्षीण होने लगती है और पेटकी नसें बिगड़ जाती हैं। इसको बहुत ग़रीब लोग कभी कभी खाते हैं। अमीर लोग बकरेका मांस खाते हैं जो मुलायम होता है। यह पाँच आने सेर बिकता है।

ग़रीब लोग दाल रोटी खाते हैं जो उनकी आयके अनुसार होती है। रोटी प्रायः जौकी होती है। ये लोग दाल बड़ी अजीब तरहसे बनाते हैं। कोई छटांकभर या उससे कुछ अधिक दालको सेरभर पानीमें पकाते हैं। उसमें बहुतसी हल्दी और मिर्चा डाल देते हैं। वे लोग कहते हैं कि इसमें मांसका फ़ायदा और ज़ायका आ जाता है मगर देखनेमें यह चीज़ अच्छी नहीं मालूम होती। यही इन लोगोंका भोजन है।

इस प्रकारके सादे भोजनमें भी आजकलकी मँहगीके समय प्रत्येक व्यक्तिके लिए कमसे कम चार रुपये महीनेकी आवश्यकता होती है।

कपड़ेके विषयमें यदि विचार किया जाय तो देखा जाता है कि भारतकी जलवायु ऐसी है कि यहाँ सालमें प्रायः तीन महीने कुछ गरम कपड़ोंकी आवश्यकता पड़ती है। सालके लगभग ८ महीनोंमें पुरुष लोग केवल एक लुंगी या अँगोछा पहनकर काम चलाते हैं। उत्सवों और मेलोंके लिए एक धोती कुरता और टोपीसे काम चल जाता है। पर स्त्रियाँ बेचारी जो परदेमें सदा घरपर ही रहती हैं उनकी दशा देखकर तरस आती है। उनकी धोतियोंमें सैकड़ों जगह जोड़ लगे रहते हैं और शायद ही कभी इन कपड़ोंको धोनेकी नौबत आती हो। छोटे बच्चे प्रायः नंगे ही फिरते हैं।

रातको इन लोगोंको ओढ़ने बिछानेके लिए फटे पुराने कम्बल और चिथड़ोंकी कथरियाँ होती हैं। यदि इनके घरमें कोई चारपाई हुई तो उसकी पीठ भी ज़मीनसे लग रही होती है। इन कथरियों और कम्बलोंको यदि पास जाकर ध्यानसे देखा जाय तो उनमें सैकड़ों खटमल मिलेंगे जिनके कारण रातको नींद पड़ना कठिन होगा। बरसातके दिनमें इनके घर मिट्टीके झोपड़ेसे भी गये गुज़रे होते हैं। ये बहुत टपकते हैं जिससे इनके भीगे हुए बिछौने बरसातके दिनोंमें मुश्किलसे सूखते हैं। और यदि माताकी गोदमें बालक हो तो उसके मलमूत्रके कारण भी ये बिछौने नम और दुर्गन्धयुक्त होते हैं। इसका फल यह होता है कि सैकड़ों तरहकी बीमारियाँ सदा इनके घर पर डेरा जमाये रहती हैं। ये बेचारे स्वच्छ रहना चाहें तो भी नहीं रह सकते। जाड़ेके दिनोंमें बहुतसे ग़रीब लोग प्रायः

एक सादा सूती कपड़ा ओढ़कर ही रात काटा करते हैं। यदि दुर्भाग्यवश इन्फ्लुएञ्ज़ा इत्यादि रोगोंका प्रकोप हुआ तो ये बेचारे दवाके या सफ़ाईके अभावसे नहीं किन्तु सरदीसे बचनेके लिए कपड़ोंके पर्याप्त न होनेसे सैकड़ोंकी संख्यामें कालके कवल हो जाते हैं।

इनके घरोंमें उपर्युक्त वस्तुओंके अतिरिक्त एक मिट्टीका हुक्का, एक पानी रखनेके लिए मैला मिट्टीका पात्र और कई दूसरे मिट्टीके बरतन दिखलाई देंगे। इन मिट्टीके बरतनोंसे मैल नहीं छूटती और कोई कोई तो देखनेमें इतने गन्दे होते हैं कि यदि उनमें खाना पड़े तो वमन भी हो जावे। मगर ये बेचारे इन्हीं बरतनोंसे अपना गुज़र करते हैं। इसके अतिरिक्त इन लोगोंके घरोंमें मिट्टीके तेलकी डिबरी बाली जाती है जिससे कोठरीभरमें विषैला धुआँ भर जाता है। इस हवामें साँस लेनेसे उनके शरीरमें विषैले पदार्थोंका प्रवेश इतना अधिक हो जाता है कि यदि इनकी नाक साफ़ कराई जाय तो उसमें काले और नीले धुएँके कण जमे हुए निकलते हैं। इसके अलावा हवाके दिनोंमें इस प्रकारकी डिबरियोंसे प्रायः आग भी लग जाया करती है।

यह दशा तो उनके मकानोंके भीतरकी हुई। अब यदि बाहर देखा जाय तो गन्दगीका कहीं ठिकाना नहीं। कहीं तो कतवार पड़ा सड़ा करता है तिसपर भी यदि ख़रबूज़ों या आमोंकी बहार हुई तो छिकलोंके सड़नेसे और भी दुर्गन्ध आने लगती है। नालियोंमें ऊपरतक कीच पिचपिचाया करता है जिसपर मक्खियोंके झुण्डके झुण्ड बैठे रहते हैं। म्यूनिसिपेलिटीके हेल्थ आफ़िसर तो कभी ही इधर तशरीफ़ लाते हैं। यदि आते भी हैं तो एक दिन पहलेसे ख़बर हो

जाती है। दुर्भाग्यवश यदि कोई छोटा मोटा जानवर जैसे चूहा, कुत्ता या बिल्ली मर गया तो वह भी गलीमें पड़ा सड़ा करता है। ग़रीब बेचारोंके पास इतना फालतू पैसा नहीं कि मेहतरसे उस लाशको हटवा भी दें।

उपर्युक्त वर्णनसे पाठकोंको इन ग़रीबोंके भोजन वस्त्रादिके ख़र्चका कुछ अनुमान हो गया होगा। ये खर्च सदाके हैं इनके अतिरिक्त विवाह और मरणके समय विशेष व्यय होता है। मुसल्मान भाइयोंमें विवाह और मरणके समयके संस्कार हिन्दुओंकी रस्मोंसे बहुत भिन्न होते हैं अतः इन अवसरोंके कृत्योंका पूरा व्योरा दिये विना व्ययका अनुमान करना कठिन होगा।

विवाहके विषयमें दो तीन बातोंको पहलेहीसे ध्यानमें रखना आवश्यक हैं। एक तो इन लोगोंमें हिन्दुओंकी तरह जन्मपत्रीका और गोत्र आदिका मिलान नहीं करना होता इस कारण इन लोगोंमें विवाह निकटके संबन्धियोंमें ही हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इन लोगोंमें दूरके नातेके भाई बहन-में भी विवाह हो सकता है। दूसरे इन लोगों में दहेजकी प्रथा नहीं है जिससे कम खर्चमें ही विवाह निपट जाता है। इन दोनों बातोंके अतिरिक्त सोनेके आभूषणोंकी बिलकुल चाल न होनेसे भी बहुत बचत होती है। इस्लाम धर्ममें सोनेके गहने पहिनना मना है। बड़ेसे बड़े अमीर लोगोंको भी केवल चाँदीके ही आभूषण पहिननेकी आज्ञा है।

विवाह होनेके पहिले वरकी ओरसे कन्याके लिए नाक, कान और हाथके लिए आभूषण भेजे जाते हैं। इनमें भी बहुतसे गहनोंकी आवश्यकता नहीं होती। गरीब लोगोंका काम कमसे कम बीस रुपये तकमें चल जाता है। आभूषण भेजनेके साथ

एक बहुत अच्छी प्रथा प्रचलित है। हम लोगोंके प्राचीन ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि पूर्वकालमें विवाहके पहले केवल वर और कन्याकी अङ्ग परीक्षा ही नहीं किन्तु वीर्य्य परीक्षा तक होती थी। दोनों पक्ष परस्पर एक दूसरेके गुण और आरोग्यतासे सन्तुष्ट होनेपर विवाह सम्बन्ध करते थे। पर अब अनेक स्थानोंमें इस प्रथाका लोपसा हो गया है। इसका फल यह होता है कि कभी कभी विवाह होने के उपरान्त कन्याके शरीर अथवा अवयवोंमें दुर्गुण पाये जाते हैं जिनके कारण उस अबलाका जीवन दुःखमय बीतता है। मुसल्मानोंमें एक प्रकारसे अङ्ग परीक्षा अबतक होती है। यदि वर पक्षके लोगों-को गुप्त रूपसे ख़बर मिलती है कि कन्याके अमुक अङ्गमें कुष्ट अथवा अन्य कोई रोग है तो उस अङ्गके लिए ख़ास गहना बनवाया जाता है। यह गहना वर पक्षकी ओरसे एक स्त्री लेजाकर कन्याको अपने हाथसे पहनाती है और साथ ही साथ उसे भली भाँति देख भी लेती है। अस्तु। विवाहमें क़ाज़ी लोग दोनों पक्षोंसे आठ आने के सरकारी कागज़ पर दस्तख़त करवाते हैं। इस कामके लिए इन्हें दो एक रुपये दिये जाते हैं।

विवाहमें कन्याके पिताका पलँग, मंचिया, चादरा और देगची देना बाध्य है। इन सबोंका व्यय भी ग़रीब लोग लग-भग दस रुपयोंमें निपटा लेते हैं।

जेवरोंमें और इन वस्तुओंमें जो व्यय लगता है उसके अतिरिक्त बिरादरीवालोंको भोज देनेमें भी ख़र्च होता है जो अवसरोंके अनुसार होता है।

विवाहकी एक और प्रथा ऐसी है जिसका उल्लेख करना शिक्षाप्रद होगा। विवाह होते समय जब स्त्रीसे पूछा जाता है

कि वह विवाह स्वीकार करती है तब वह एक शर्त पेश करती है। वह कहती है यदि उसका पति उसे तलाक़ दे तो उसे स्त्रीधनके रूपमें इतना धन देना पड़ेगा। यह रक़म ग़रीबोंमें प्रायः २२॥) रुपया होती। इसे महर कहते हैं। कहीं कहीं महर सामर्थ्यसे बाहर होनेके कारण विवाह ही नहीं होता। पर शरीफ़ोंके विवाहमें यह प्रथा नहीं होती। इससे फ़ायदा यह होता है कि यदि दुर्भाग्यवश पतिके ऊपर कुरकी आवे तो वसूल करनेवाला महरकी रक़ममेंसे कुछ नहीं पा सकता।

इस प्रकार साधारण स्थितिके लोगोंमें एक सौ रुपएमें विवाहके सब कृत्य हो सकते हैं। ग़रीब लोगोंका और कम हीमें गुज़र हो जाता है।

अब रहा मृत संस्कार। इसमें भी कुछ अधिक व्ययकी आवश्यकता होती है। इसका भी कुछ विस्तृत व्योरा दिये बिना व्ययका ठीक अनुमान नहीं हो सकता।

मुसल्मानोंके मुरदे गाड़े जाते हैं जिनके गाड़नेके स्थान बादशाही ज़मानेसे ही दिए हुए हैं। बहुत लोगोंके लिए ऐसे स्थान अलग अलग कर दिए गए हैं जहाँ उनके कुलके अथवा उनके सम्प्रदाय बिशेषके मुरदे गाड़े जायँ। ऐसे स्थान हडा-बर कहे जाते हैं। शरीरान्त होनेपर शवको स्नान कराया जाता है और उसके शरीर भरमें इत्र लगाया जाता है। इत्र जितना सुगन्धित हो उतना ही अच्छा माना जाता है। इसके उपरान्त एक थान मलमल का मुर्देके कपड़े और कफ़नके लिए मँगाया जाता है और उसी समय शवका अंगरखा और पाजामा सिया जाता है। आज कल साधारण मल-मलका थान ११, १२ रुपयोंमें मिलता है। यदि रात हुई या कोई और बेमौका हुआ तो दर्जी ही दुगुनी तिगुनी सिलाई

ले लेते हैं। इसके बाद मुर्दा एक बेढकनेके संदूकमें सुलाया जाता है और उसके चारों ओर कफ़न लपेटा जाता है। यह संदूक ख़रीदना नहीं पड़ता बल्कि पंचायती होता है। फिर धीरे धीरे मुर्देको हडावर पर ले जाते हैं। वहाँ पर कबर खोदनेवालोंको सवा रुपया देना पड़ता है। कबरमें मुर्देके चारों ओर नए तख्ते लगाये जाते हैं जिनमें करीब तीन रुपया ख़र्च होते हैं। इसके अतिरिक्त मुर्देके सिरहाने एक रुपया नक़द रक्खा जाता है जो उसके साथ गाड़ दिया जाता है और सवा रुपया उस श्मशान भूमि पर रहनेवाले साईंको दिया जाता है। मुर्देके नाम पर रुपया दो रुपया ग़रीब भिखमंगोंको ख़ैरात दिया जाता है।

इन क्रियाओंके बाद सम्बन्धियोंको २ दफ़े हुक्का तमाखू देना पड़ता है और मरनेके तीसरे दिन जिसे तीजा कहते हैं एक प्रकारका श्राद्ध सा होता है। कुछ लोग चालीसवें दिन भी इसी प्रकारका भोज देते हैं पर यह अपनी हैसियत पर निर्भर है। इस प्रकार कमसे कम पचीस तीस रुपयोंका व्यय मृत्युमें अवश्य हो ही जाता है यदि मौत कुसमय होजाय जैसे रातको या किसी महामारीके समय जब कि चारों ओर लोग मर रहे हों तब ऐसा भी देखा जाता है कि दरज़ी या क़बर खोदनेवाले बड़ा कष्ट देते हैं और मनमाना मज़दूरी माँगते हैं।

जुलाहोंके समाजमें शिक्षाका भी बड़ा अभाव है। एक तो जो लोग ग़रीब हैं वे अपने लड़कोंको सात बरसकी अवस्थामें ही किसी बड़े गृहस्थके यहाँ डोरिया नौकर रखा देते हैं। और जो किसी तरह पढ़ानेके लिए भेजते हैं उन्हें भी विशेष लाभ नहीं होता। लड़कोंकी शिक्षाके लिए दो एक बड़े मदरसे हैं

पर वहाँ कुरानशरीफ़की आयतोंको रटानेके सिवा कोई लिखने पढ़नेकी अथवा और विषयोंकी शिक्षा नहीं दी जाती जो जीवनयात्रामें उपयोगी हो। जो लोग इस कुरानकी पुस्तकको इतना रट डालते हैं कि वे कुरानके वाक्योंका स्थान पता पृष्ठादि बतला सकें कि यह किस स्थान पर कहा गया है तो उन्हें हाफ़िज़की उपाधि प्रदानकी जाती है। जो इन वाक्यों अथवा पदोंका अर्थ भी लगा सकते हैं वे मौलवी और आलिमकी पदवी पाते हैं।

अलईपुरके इसलामियाँ मक़तब (मदरसे)में हालमें पाठन प्रणाली कुछ परिवर्तित हुई है। अब वहाँ कुछ गणित आदिकी भी पढ़ाई होती है इस मक़तबमें ६ अध्यापक हैं जिनके वेतनका प्रबन्ध पंचायत चन्देसेही करती है। पर इतना कहे विना नहीं रहा जा सकता कि जबतक कुछ आर्थिक सुधार नहीं होगा तबतक शिक्षाका प्रचार ग़रीबोंमें बहुत धीरे धीरे होगा।

मदनपुरेके और अन्य महल्लोंके धनी गृहस्थोंको छोड़ कर अन्य कारीगर कच्चे मकानोंमें रहते हैं जो प्रति बरसातमें पानी चूनेसे बड़ा कष्ट पाते हैं मकान भी बाहरसे मालूम होते हैं कि मानों अब गिरा ही चाहते हैं और वे किसी ख़ास सिलसिलेमें नहीं बने होते।

बालकोंकी और स्त्रियोंकी आय प्रति व्यक्ति चार या पाँच रुपये महीनेसे अधिक नहीं होती और एक अधेड़की हद्द १५ रुपये महीने तक होती है।

साधारणतः एक कुनबेमें पुरुष, स्त्री और दो तीन बच्चे होते हैं। कभी कभी बूढ़े माँ बाप और बहिन भी होते हैं पर आमतौरसे एक कुटुम्बमें पाँच या छः प्राणीतक होते हैं।

इन लोगोंका समय प्रायः दिनभर अपने घरपर या

कारख़ानेदारके घरपर काम करते ही बीतता है। प्रातःकाल उठकर कुछ लोग मसज़िदोंमें नमाज़ पढ़ने जाते हैं और उसके बाद सूर्योदय होते तक कामपर पहुँच जाते हैं। स्त्रियाँ घर-परका काम, जैसे रेशम खारना आदि नित्य कर्मोंके बाद शुरू करती हैं और बारह बजेतक खाना पकाकर तैयार कर चुकती हैं फिर तीसरे पहर अपने काममें लग जाती हैं। ईद बकरीद आदि त्योहरोंपर ये लोग खाना पकाकर साथ ले जाते हैं और बाहरी ओर जाकर खाते पीते और मेला देखा करते हैं।

भोजनमें प्रायः जौकी रोटी और पतली दाल होती है। कभी कभी सस्ता मांस भी पका लेते हैं। आम, ख़रबूजा, खीरा, ककड़ी आदिके मौसिममें बहुतेरे लोग केवल सस्ता होनेके कारण फल ही खाकर रह जाते हैं। पर सस्ते फल प्रायः सड़े हुए होते हैं और इनके कारण हैज़ा बहुत शीघ्र फैलता है।

साधारणतया मासिक आमदनी ६, या ७, रुपयेसे लेकर १५, या १६, रुपयेतक होती हैं। शायद ही कोई घर ऐसा हो जहाँ कुछ बचत हो सकती हो। हाँ स्त्रियाँ कभी कभी कुछ बचाकर रखती हैं।

शराबकी लत इन लोगोंमें बहुतोंको लग गई है। यह शराब कलवरियासे मिलता है और खुला मिलनेके कारण सस्ता और ख़राब होता है। इनके महल्लामें बहुतेरी ख़ानगियाँ या रंडियाँ भी रहती हैं जिनकी आमदनी हद एक रुपया होती है। साधारणतः गृहस्थोंके घरोंमें सदाचार पाया जाता है।

२.

ज़रदोज़ीका काम करनेवाले

ज़रदोज़ीका काम काशीके अतिरिक्त आगरे दिल्ली वगैरह-में भी होता है मगर इन शहरोंमें बना हुआ काम उतने ऊँचे दरजे और ज्यादा दामोंका नहीं होता जितना बनारसका होता है। बनारससे रजवाड़ोंमें बराबर माल जाता रहता है और बड़े बड़े दामोंकी चीज़ोंकी माँग रहती है इससे यहाँ ज़रदोज़ीका काम बहुतायतसे होता है। आगरे दिल्ली वगैरहमें प्रायः टोपियाँ अधिक बनती हैं।

ज़रदोज़ीके बारेमें कुछ कहनेके पहले कमख़्वाब और ज़रदोज़ीमें फ़रक बतला देना अनुचित न होगा। कमख़्वाबमें केवल कलाबत्तूका तार लगता है और इसके थानमें ताना रेशमका और बाना कलाबत्तूका होता है। इसकी बिनावट साड़ीके आँचल और बेलबूटोंके ढङ्गपर होती है। इसके बिननेका काम साड़ी बिननेवाले ही करते हैं और उनकी मज़दूरी कामके मुताबिक एक रुपये गज़तक होती है। ज़र-दोज़ीका काम इससे बिलकुल भिन्न होता है। इसे क़सीदा कह सकते हैं। इसमें मखमल या दूसरे मज़बूत कपड़ेपर सलमे सितारेसे बेलबूटे काढ़े रहते हैं। इसमें कलाबत्तू बहुत कम लगता है और जो लगता है वह भी सितारा टाँकने में ही।

ज़रदोज़ीकी चीज़ें प्रायः राजा लोगोंके दरबारोंमें जाती हैं और अधिकतर हाथी घोड़ोंके पीठके साज, पालकियोंके

साज़, सिंहासन इत्यादिके सामान, तकियोंके ग़िलाफ़ और कालीन होते हैं।

मखमल जिसपर यह काम बनाया जाता है। पहले चारों ओरसे तानकर बाँध दिया जाता है। उसपर जिस तरज़के बेलबूटे बनाने होते हैं उसका एक नकशा काग़ज़का बनाया जाता है और चलनीकी तरह सुईसे छेदा जाता है। यह चलनीनुमा नकशा मखमलपर रक्खा जाता है और काग़ज़के ऊपर राख डाली जाती है जो छेदोंसे छनकर मखमलपर नकशेके मुताबिक गिरती है। बस इसी राखके निशानपर काढ़नेका काम होता है। पहले तो सादे बिनबटे रेशमसे कामकी ज़मीन भर दी जाती है और तब उसपर सुईसे सलमें सितारोंके द्वारा बेलबूटे बना दिये जाते हैं। अर्थात् इस उभाड़के बेलबूटेकी कढ़ाईमें भीतर तो रेशम रहता है और ऊपर सलमा और सितारा। इन सलमें सितारों को भी प्रायः औरतेंही बनाती हैं जो अधिकतर मुसलमान ही होती हैं। इन्हें मेहनत तो बहुत पड़ती है और मशीनकी तरह दिनभर एक ही तरहका काम करना पड़ता है लेकिन मज़दूरी बहुत कम मिलती है। खाना पकानेके समयको छोड़कर दिनभर मेहनत करने पर भी मुश्किलसे चार आने रोज़ मिलते हैं।

ज़रदोज़ीका काम कारखानेदारोंके घरपर भी होता है। ये लोग महाजन या कोठीवालोंसे काम लेते हैं या अपना काम तैयार करके उनके हाथ बेचते हैं। पहली अवस्थामें महाजन मखमल या दूसरा कपड़ा देता है जिसपर बिनाई होनेको होती है। इसके अतिरिक्त वह तोलेके हिसाबसे तौलकर सलमा और सितारा देता है जिसकी तौलके मुताबिक बारह

आने या इसीके लगभग तोलेके हिसाबसे कारख़ानेदारोंको मज़दूरी देता है। भारी वज़नके सलमेंपर कम मज़ंदूरी दी जाती है।

अब कारख़ानेदार अपने यहाँ कारीगरोंको रखकर काम तैयार कराता है। रेशम वग़ैरह बाक़ी सब सामान वही अपने पाससे देता है और कारीगरोंको भारी वज़नके सलमेवाले कामपर आठ आने तोला और हलके और पतले सलमेंपर बारह आने तोला मज़दूरी मिलती है। हलके और भारीमें मज़दूरीका फ़रक इस वास्ते है कि जितने समयमें एक तोला वज़नमें हलका सलमा टाँका जायगा उतने समयमें भारी दो तोला टाँका जायगा क्योंकि पतलेकी बराबर लम्बाईमें उसका वज़न बढ़ जायगा।

दूसरी अवस्थामें अर्थात् जहाँ कारख़ानेदार अपना काम बनवाता है वहाँ सब चीज़ें उसे ही देनी पड़ती है। कारख़ानेदार अधिकतर अपने पाससे टोपियाँ तैयार कराते हैं और कभी कभी स्वयं भी तैयार करते हैं।

कारीगरोंकी मज़दूरी सैकड़ों बरससे आठ आना तोला ही चली आती है। पर चीज़ोंकी मँहगीके साथ उनकी यथार्थमें मज़दूरी कम होती गई है क्योंकि पचास या पचीस बरस पूर्व आठ आनेमें जितना अन्न या और चीज़ें मिलती थीं अब मुश्किलसे उसकी तिहाई या चौथाई मिलती हैं, पर मज़दूरी उनकी आठ आना ही चली आती है। इन लोगोंको सूर्योदय से लेकर सूर्यास्ततक सुईका बारीक काम करना पड़ता है। दोपहरको केवल खाना खानेके लिए घन्टे आध घन्टेकी फ़ुरसत मिलती है। त्योहारोंपर जब काम बन्द रहता है तो इनको मज़दूरी नहीं मिलती अर्थात् जितने दिन काम करते हैं उतने

दिनोंकी ही मज़दूरी मिलती है। इस हिसाबसे इनको साल-भरमें लगभग आठ महीने काम मिलता है और चार महीने वे बेकार रहते हैं। कभी कभी यदि महाजनोंसे कारख़ानेदारोंको काम न मिला तो कारीगरोंको कहीं काम न मिलनेके कारण भूखों मरना पड़ता है। वास्तविकरूपसे यदि विचार किया जाय तो मालूम होगा कि इन मेहनती कारीगरोंको, जिनमें ऐसा बढ़िया कामका हुनर है, एक साधारण कुलीसे भी कम मज़दूरी मिलती है। कुछ दिनों पहले ये लोग इसी आठ आने रोज़की मज़दूरीपर अमनचैनसे रहते थे और महल्ले महल्लेके अखाड़ोंमें कसरत करते पाये जाते थे। पर अब क्रमशः अखाड़ोंका लोप हो रहा है और कसरतके स्थानपर अफ़ीम और सिगरेटकी लत पड़ी दिखलाई देती है। वास्तवमें इन बेचारे कारीगरोंके घरपर जो दृश्य दिखलाई देता है उसे देखकर कलेजा फटने लगता है। इन बेचारोंकी स्त्रियों और बालबच्चोंका हाल लिखते लेखनी रुक जाती है।

वास्तवमें देखा जाय तो मालूम होगा कि कमख़्वाब, ज़र-दोज़ी और दूसरे बनारसी कपड़े अपनी असली लागतसे दुगने तिगुने दामोंपर बिकते हैं पर तिसपर भी मज़दूरी इतनी कम दी जाती है। अब विचार करना चाहिए कि यह अन्धा-धुन्ध मुनाफ़ा किसके पास जाता है। जैसा ऊपर कहा गया है कारख़ानेदार व्यवसायी महाजनोंका काम एक बँधी हुई दरसे अपने घरोंपर तैयार कराते हैं। जितनी रक़म वे महा-जनसे पाते हैं और जितना उनको मज़दूरीमें और रेशम वग़ैरहके दाममें ख़र्च करना पड़ता है उनमें इन्हें लगभग दो या तीन आने रुपयेकी बचत होती है। इस प्रकार इनका फ़ायदा भी बँधा हुआ है। अब महाजन जो दाम चाहता

है वह वसूल करता है। यह तो हुई उस समयकी हालत जब महाजनका माल कारख़ानेदार तैयार करते हैं। इसके अतिरिक्त जब कारख़ानेदार अपना रुपया लगाकर माल बनवाते हैं तब भी महाजनहीकी मुट्ठीमें असली मुनाफ़ा जाता है। क्योंकि कुछ कारख़ानेदारोंको छोड़कर जो स्वयं अपनी दूकानोंपर टोपी बेंचते हैं लगभग सब कारख़ानेवाले अपना माल सीधे ग्राहकके हाथ न बेंचकर महाजनकेही हाथ बेंचते हैं। इन लोगोंमें इतना एका नहीं और न ईमानदारीसे इन्तज़ाम करनेकीही आदत है कि ये मिलकर एक बड़ी कोठी खोलें जहाँसे स्वयं अपनी पूँजीका माल बनाकर बाज़ारदरसे बेंचें। अब ज़रा इसपर भी ध्यान देना चाहिए कि किस तरह इनकी पूँजीके मालपर महाजन मनमाना मुनाफ़ा उठाते हैं और ये सब देखते हुए भी कुछ नहीं कर पाते। जब ये महाजनकी कोठीमें अपना माल ले जाते हैं तो महाजन पूँछता है कि तुम्हारे मालपर कितने दामकी चिट्ठी डाल दें। इसपर जो दाम ये बतलाते हैं वह लिख लिया जाता है और उसका आधा दाम पेशगी दे दिया जाता है और इनसे कहा जाता है कि जितनेका माल बिकेगा उसमेंसे पेशगी निकालकर बाक़ी रकम पीछे दी जायगी। जब हिसाब होता है तो महाजन कहता है कि माल तो बहुत कम दामपर बिका। कभी कभी तो यह दाम लागतसे भी कम पड़ता है। यदि कारख़ानेदार कहता है कि आपने इतने कम दामपर क्यों बेंचा जो लागतसे भी कम पड़ता है। तब जवाब मिलता है कि इससे ज़्यादा दाम नहीं लगता। तुमको न बेंचना हो तो पेशगी वापस करके माल उठा ले जाओ। अब ये बेचारे क्या करें। पेशगीका रुपया तो इन्होंने ख़र्च कर डाला। इसपर लाचार होकर जो

महाजन देता है वही लेना पड़ता है उसमेंसे भी दस तरहके कर—जैसे मुनीमका, मन्दिरका इत्यादि इत्यादि काट लिये जाते हैं। एक दफ़े इसी प्रकार एक महाजनने एक कारख़ानेवालेको दबाया। संयोगवश एक उदारहृदय मुसल्मान भाई खड़े हो गये और अपने पाससे रुपया लेजाकर महाजनसे बोले—"लीजिये, अपना पेशगी वापस लीजिये और इसका माल लौटाइये।" पर माल तो मुनाफ़ेसे बिक गया था। अन्तको झख मारके महाजनको वही दाम चुकाना पड़ा जो कारख़ानेदारने पहले निश्चय किया था। कुछ दिन हुए बम्बईके दो मुसल्मान सेठोंने जब यहाँकी यह दशा देखी तो वचन दिया कि हम इसी तरह पेशगी लौटानेके लिये रुपया उधार दे दिया करेंगे और इससे ठीक दाम बसूल हो सकेगा। पर यह केवल मौखिक सहानुभूति ही रह गई, कार्यमें परिणत न हुई। यह दुर्दशा साड़ी, दुपट्टे इत्यादि सब प्रकारके बनारसी काम बनानेवालोंकी होती है।

३.

कलाबत्तू आदि बनानेवाले

बनारसी कपड़ोंमें—जैसे साड़ी, दुपट्टे और कमख़्वाब ज़रदोज़ी—दो चीज़ोंकी आवश्यकता होती है। एक तो रेशम और दूसरा सोने या चाँदीका तार जो कलाबत्तू कहा जाता है। रेशमके विषयमें तो अन्यत्र लिखा जा चुका है अब यहाँपर कलाबत्तू आदिके विषयमें कुछ विस्तृत वर्णन देना आवश्यक

होगा। साड़ी डुपट्टे ही बनारसकी प्रसिद्ध वस्तुएं हैं, इस कारण कलाबत्तूका व्यापार भी प्रसिद्ध व्यापारोंमेंसे एक है। कलाबत्तू, सलमा, सितारा आदिका काम केवल बनारस हीमें नहीं होता क्योंकि ये चीज़ें साड़ी डुपट्टोंके अतिरिक्त और कामोंमें भी आती हैं। लखनऊ और आगरेमें भी यह काम बहुतायतसे होता है और कई बातोंमें इन स्थानोंमें तैयार हुआ माल काशीके मालसे अच्छा होता है। विदेशी व्यापार फैलनेके पहले काशीमें हाथसे बहुत सा कलाबत्तू तैयार किया जाताथा। मगर कुछ दिनसे फ्रांसके अन्तर्गत लियन्स नगरसे कलाबत्तू आने लगा। यह बाहरी माल यद्यपि दाममें देशी मालसे कुछ मँहगा होता था, पर चमक दमकमें उससे अच्छा होता था और काममें आनेपर काला नहीं हो जाता था। इस मालके आनेसे यहाँ कलाबत्तूका बनना लुप्त प्राय सा हो चला था कि १९१४ में यूरोपीय महाभारतका आरम्भ हो गया। इस युद्धके कारण बाहरी मालकी आमदनी बहुत ही कम हो गई और इसका दाम बेहद बढ़ गया। ऐसी अवस्था आ पड़नेपर देशी व्यापारमें कुछ जीवन आ गया। लड़ाईके पहलेसे यहाँ एक कलाबत्तूकी फैक्टरी खुली थी जिसमें मशीनोंके द्वारा माल तैयार होता था। पर फ्रांसके मालके सामने इस फैक्टरीका माल जंचता न था और इसी कारण इसकी विशेष उन्नति नहीं हो सकी थी। पर लड़ाईके बाद इतना काम अच्छी तरह चल निकला और अब यहाँका बना माल शहरमें खपनेके अतिरिक्त बाहर भी जाता है।

फैक्टरीके अतिरिक्त अनेक छोटे छोटे व्यापारी लोगोंका भी काम अच्छी तरह चलने लगा।

कलाबत्तू बनानेमें कई प्रकारके कारीगरोंकी आवश्यकता

होती है। पहले तो चाँदीको पीटकर मोटा तार बनाते हैं फिर उससे फासेमें खींचकर आवश्यकतानुसार पतले तारमें परिवर्तित करते हैं। इसके बाद यह पतला तार पीटकर पत्तर बना लिया जाता है जिसे बादला कहते हैं तब इस बादलेपर सोनेका पानी चढ़ाया जाता है और यह बटे हुए रेशमके डोरेपर लपेट दिया जाता है। बस इसीको कलाबत्तू कहते हैं।

कलाबत्तूके तैयार करनेमें कारीगरोंका कार्यविभाग अच्छी तरह पाया जाता है। कुछ लोग केवल चाँदीको पीटकर मोटा तार बनाने हीका काम करते हैं। कुछ लोग तारकशी करते हैं जिससे महीन तार बनता है और कुछ कारीगर केवल पीटनेका काम करते हैं। उपर्युक्त तीनों प्रकारके कामोंमें मज़बूत आदमियोंकी आवश्यकता पड़ती है क्योंकि इसमें बाहुबलका विशेष प्रयोग होता है अतः ये काम केवल पुरुष ही करते हैं। इनकी मज़दूरी तोला या भरीके हिसाबसे दी जाती है और ये लोग प्रायः दस बारह आने तक रोज़ कमा लेते हैं। पर इनको मेहनत बड़ी पड़ती है और गरमीके दिनोंमें तो ये लोग प्रायः दिनभर पसीनेमें तर रहते हैं।

बादलेसे कलाबत्तू बनानेमें मेहनत तो कम पड़ती है पर काम बड़ी बारीकीका होता है। बुड्ढे लोग अथवा स्त्रियाँही यह काम करती हैं। बहुतसे घरोंमें छोटी मशीनोंके द्वारा यह काम तैयार होता है। ये मशीने बड़े बड़े कारीगर या व्यापारियोंके घर पर होती हैं। इनके यहाँसे स्त्रियाँ काम ले जाती हैं और अपने घर पर माल तैयार करके दे जाती हैं। पर जो काम इनको दिया जाता है वह प्रायः घटिया होता है। ये स्त्रियाँ भूठा बादला तैयार करती हैं जिसमें सोनेके पानीकी जगह हल्दीका रङ्ग दिया जाता है। यह माल बहुत जल्दी काला पड़

जाता है। स्त्रियोंको लगभग चार छः आने रोज़की मज़दूरी मिल जाती हैं। शहरकी बहुतसी मज़दूरनियाँ दो एक रुपये-पर गृहस्थोंके घरपर बरतन माँजनेकी अपेक्षा कलाबत्तू बटने-में अधिक कमा लेती हैं और काशीमें मज़दूरनियोंके कमीका यह भी एक कारण है।

सलमे सितारे और डाकका काम भी स्त्रियाँ ही करती हैं पर इस काममें इनको मज़दूरी बहुत कम दी जाती है। अधिक से अधिक दो आना दिन भरकी मज़दूरी मिलती है।

कारीगरोंके घरपर जो मशीनें काममें लाई जाती हैं वे सूरत, अहमदाबाद इत्यादिसे मँगाई जाती हैं जहाँ कलाबत्तूका काम अच्छा होता है। इन मशीनोंसे दो काम निकाले जाते हैं। एक तो बादला पीटनेका दूसरा कलाबत्तू बटने का। मशीनसे एक आदमी हाथसे जितना बँट सकता है उससे पाँच गुना काम कर लेता है, पर व्यापारियोंका कहना है कि मशीनसे ठीक काम लेनेमें यहाँके लोगोंको शिक्षा बिना काम करना नहीं आता और सूरतके कारीगर अधिक मज़दूरी लेते हैं। लियन्सका कलाबत्तू सूती डोरेपर बँटा रहता है और उसमें चाँदीके बादलेकी जगह ताँबेका बादला रहता है। इस मालमें देशी मालसे लागत तो कमती होती है पर इसका तार अधिक पतला, लम्बा और चमकदार होता है।

इस व्यापारमें एक त्रुटि और है। लखनऊ वगैरहमें एक छोटी सी पंचायत सी होती है जहाँ सोना चाँदी परखकर मोटे तार बनाकर माल तैयार करनेवालोंको दिये जाते हैं। वहाँ हलदीके रङ्गका अथवा धुयेंसे रँगा हुआ धोखेका माल कम मिलता है पर यह कोई ऐसी संस्था नहीं है जिसके कारण अकसर सोने चाँदीमें मेल दे ही दिया जाता है।

४.

पीतलकी चीज़ें बनानेवाले

यों तो संयुक्तप्रान्तमें मुरादाबाद, मिर्ज़ापुर और फ़रुख़ाबाद ऐसे बड़े तिजारती शहरोंमें धातुके और प्रायः पीतलके बरतनोंके बड़े बड़े कारख़ाने हैं और सैकड़ों मन माल रोज़ गलता ढलता रहता है, किन्तु इन शहरोंमें अधिकतर थोक व्यापार होता है। वहाँसे बनकर माल और जगहोंको भेजा जाता है। इन तीनों शहरोंमें बड़े बड़े व्यापारी तो मिलेंगे लेकिन थोड़ी पूँजीवाले गृहस्थ व्यापारी बहुत ही कम मिलेंगे। ये तो केवल थोड़ा थोड़ा माल तैयार करके शहरहीमें बेंच सकते हैं। बाहर भेजनेके लायक माल इनमेंसे अकेला शायद विरला ही रखता हो।

किन्तु बनारसमें अज्ञातकालसे सैकड़ों यात्री हिन्दुस्तानके प्रत्येक प्रान्तोंसे प्रतिदिन स्नान पूजनके लिए आते हैं। और यहाँसे एकाध धातुपात्र जैसे कमसे कम लोटा तो हरेक ले जाता है। इस कारणसे फुटकर तिजारत यहाँ अच्छी होती आई है और इससे यहाँ बहुतसे छोटे छोटे थोड़े पूँजीवाले व्यापारी भी बहुतसे हो गये हैं। पचास साठ बरस पहले इन हाथसे बने बरतनोंकी बड़ी माँग थी क्योंकि उस समय चीनीके बरतन, क़लईदार लोहेके पात्र और अलमुनियमके बरतन नहीं चले थे। मुसल्मानोंके घरोंमें भी ताँबेकी देगची और हांड़ियोंका बड़ा रिवाज था। पर अब तो इन लोगोंके यहाँ टीन, लोहे और मिट्टीके बरतन अधिकतर काममें लाये जाते हैं। इसके अलावा अलमुनियमके पात्र ढलाईके कारण

कुछ सस्ते पड़ते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे ताँबे पीतलके बहुतसे कारखाने कम हो गये। पर पुराने चालके लोटे, थाली, परात, हंडे, मूर्त्तियाँ और नकाशीदार बरतन अब भी पहलेहीकी तरह बनते हैं।

मुरादाबादमें पीतलकी ढलाई वगैरहका काम मुसल्मानोंके हाथमें है पर काशीमें इस व्यवसायमें कसेरे, ठठेरे, लोहार, बनिये और अहीर भाग लेते हैं। यहाँ पीतलके बरतनोंका काम अधिकतर होता है। इस कामके चार मुख्य विभाग किये जा सकते हैं। यथा :—

(१) पुराने बरतनोंको ढालकर नये बनाना।

(२) नई चद्दरके लोटे आदि पीटकर तैयार करना।

(३) मूर्त्तियाँ ढालना।

(४) विविध प्रकारकी नकाशीका काम।

पुराने बरतनोंकी ढलाईका काम यहाँ अधिक होता है। बहुतसे छोटे व्यापारी ऐसे हैं जो अपने घरपर स्वयं ही ढालने, साँचा बनाने, खरादने आदिका काम करते हैं। इन्हें २०, २५ रुपये मासिककी आमदनी पड़ जाती है। इनका ख़र्च भी कुछ विशेष नहीं होता। भोजन इनका सादा ही रहता है पर खटिक, अहीर आदिसे अच्छा होता है। इन लोगोंके यहाँ आजकल कमसे कम ८, १० रुपये प्रतिव्यक्ति भोजन-ख़र्च पड़ जाता है। कपड़ा भी इन लोगोंका बहुत ही सादा रहता है। गरमीमें इनको आँचके सामने अथवा घरके भीतर ही काम करनेके कारण दो एक अँगोछोंसे काम चल जाता है। बाहर जाने या दूकानपर बैठनेके लिए धोती, दुपट्टा पर्याप्त होता है। इनके घरकी स्त्रियाँ केवल गृहस्थीका कामकाज सँभालती हैं।

इनके अतिरिक्त बहुतसे बड़े बड़े व्यापारी लोग अपने घरोंपर मज़दूरी देकर माल तैयार करवाते हैं। सबसे अधिक वेतन साँचा बनानेवालेका होता है। इसका काम बड़ी बारीकीका होता है और मेहनत भी अधिक पड़ती है। मज़दूरी तौल और आकारके अनुसार मिलती है जिसमें अच्छा कारीगर १०, १२ आने रोज़ कमा सकता है। बहुतसे साँचे बनाने वाले १० से १५ रुपये मासिकपर नौकरी भी कर लेते हैं। इसके बाद भट्ठी फूँकनेवालोंका काम आता है। इस प्रक्रियामें अभीतक कोई मशीन काममें नहीं लाई जाती। ज़मीनमें भट्ठी खोदकर चमड़ेकी भाथी (धौंकनी)से हवा दी जाती है। भट्ठीके ऊपर गलाईजानेवाली धातु एक विशेष प्रकारके पात्रमें रक्खी जाती है। भट्ठी फूँकना एक तो साधारणतः अधिक परिश्रमका काम होता है पर गरमीमें तो तकलीफ़की हद हो जाती है। इन लोगोंको मज़दूरी ८ आने रोज़तक दी जाती है।

बरतन ढल जानेपर खरादे जाते हैं अर्थात् मैल खुरचकर चमकदार बनाये जाते हैं। खरादनेवालेको भी ८ आनेके क़रीब रोज़ मिलता है। आमतौरसे इन कारीगरोंकी आर्थिक दशा ख़राब नहीं रहती, पर जब इनको काम नहीं मिलता तब इनको बहुत कष्ट सहना पड़ता है। ये कुली वग़ैरहका काम तो कर नहीं सकते और अन्य कार्यकी इनको शिक्षा नहीं होती।

ढालना पहले बहुत प्रचलित था और अब भी दूसरे शहरोंमें बहुत होता है, पर काशीमें अब केवल फूल या कुटके बटुए, गिलास और कटोरे और थोड़े पीतलके बरतन ढाले जाते हैं।

पीतल या ताँबे या जरमन सिलवरकी चद्दरके बरतन यहाँ अधिकतर तैयार किये जाते हैं। चद्दर ढालनेका काम

मिर्ज़ापुरमें बहुत होता है। वहाँसे और बाहरसे महाजन लोगोंकी कोठियोंमें बड़ी बड़ी चद्दरें मँगाई जाती हैं। मिर्ज़ापुरसे कुछ बड़ी चद्दरोंकी कतरन भी आती है जिससे छोटी छोटी लुटिया इत्यादि बनती हैं। छोटे व्यापारी चद्दर मोल लेकर या बड़े बड़े व्यापारियोंसे ठीकेपर काम लेकर अपने घरपर माल तैयार करते हैं। ये लोग अधिकतर तो स्वयं ही सब काम करते हैं, पर कभी कभी केवल बाहुबलके परिश्रमके लिए मज़दूर रख लेते हैं। इनके यहाँ मज़दूर दो तरहके होते हैं। चद्दरमेंसे गोल टुकड़े नापकर काट लिए जाते हैं और मज़दूर लोग उन्हें पीटकर निर्दिष्ट आकारका बनाते हैं। इस काममें बाहुबलके परिश्रमकी अधिक आवश्यकता होती है इस कारण साधारण बुद्धिके मजदूर भी सात आठ आने रोज़ पैदा कर लेते हैं। इनको १० घण्टेके क़रीब काम करना पड़ता है। मज़दूरी इनको प्रायः रोज़की दी जाती है और एक जगह लगातार बहुत दिनतक काम भी नहीं मिलता क्योंकि जब बहुतसे बरतन पिटकर ठीक हो जाते हैं तब उन्हें जोड़ना और खरादना पड़ता है। दूसरे मज़दूर वे होते हैं जो कुननेका काम करते हैं। पत्तर पीटे जानेके उपरान्त अलग अलग बने हुए टुकड़ोंको जोड़कर बरतन तैयार किया जाता है। उसके बाद वह खरादा जाता है। खरादनेकी कल चरखेकी तरह घूमती है। वह रस्सी खींचनेसे चलती है। इस रस्सी खींचनेको कुनना कहते हैं। कुननेके लिए कभी कभी लंगड़े या अन्धे भी रख लिए जाते हैं। क्योंकि उन्हें मशीनकी तरह हाथसे डोरी खींचनी पड़ता है। मज़दूरी चार आनेसे लेकर आठ आने रोज़तक मिलती है। इस तरह पीटकर बनाये जानेवाले बरतनोंमें अधिकतर लोटे और गगरे ही होते हैं।

काशी एक तीर्थस्थान होनेके कारण यहाँ देवी देवताओं-की मूर्तियाँ भी बहुत बिकती हैं। मूर्तियाँ प्रायः फूल या पीतल-की होती हैं और ढालकर बनाई जाती हैं पर इस काममें बहुत कम व्यापारी लगे हैं। इस काममें साँचा बनानेवालोंको अच्छी मज़दूरी मिलती है। पहले तो मोमकी मूर्ति बनाई जाती है फिर उस पर मिट्टी चढ़ाई जाती है। इस मिट्टीके ढाँचेमें एक छेद होता है। मिट्टीकी मूर्ति आगपर रखकर गरमकी जाती है जिसमें गलकर मोम तो बाहर निकल आती है और मिट्टीका साँचा लोहेकी तरह मज़बूत हो जाता है। तब उसमें गला हुआ ताँबा या फूल डाला जाता है। साँचा बनानेवालोंको आठ आनेसे एक रुपए रोज़तक मज़दूरी दी जाती है। मूर्तियोंके विषयमें एक बात देखनेमें आती है कि अबतक भी सैकड़ों बरस पुराने ढङ्गके साँचे ही काममें लाये जाते हैं। कोई नई तरज़ अथवा नए आभूषण बहुत कम मिलेंगे। इसका कारण यह है कि कारीगर लोग वंश पम्परासे घरही-में काम सीखते हैं और उन्हें अपने बुद्धिसे नए तरज़ सोचकर बनानेका अवकाश और सुयोग नहीं मिलता। बेचारोंको रोज़ पेटकी फ़िकिर सताती रहती है। उन्हें तो साँचे बनाने और मजदूरी पानेके सिवाय इतना समय ही नहीं मिलता कि नया ढङ्ग सोचें। कला कौशलके ऐसे प्रेमियोंकी बड़ी आव-श्यकता है जो पुरस्कार द्वारा होनहार कारीगरों और चित्र-कारोंको उत्साहित करें और उनकी प्रतिभाशाली बुद्धिका विकास करावें।

अब रहा नकाशीका काम, इसमें भी बहुतसे कारीगर लगे रहते हैं। नकाशीका काम दो तरहका होता है। एक तो साधारण बरतनपर गोद कर तरह २ की मूर्तियाँ, फूल, बेलबूटे

अथवा अन्य दृश्य खोदना होता है। दूसरा उभाड़का काम होता है जिसमें जानवर, बेलबूटे आदि बरतनकी सतहसे कुछ उभड़े रहते हैं।

नकाशीका काम चद्दरके या बिना ढले हुए बरतनोंपर ही होता है। साधारण नकाशीमें बरतनोंपर (या अधिकतर लोटों-पर) गोदनेकेसे निशान पीटकर बनाए जाते हैं। पहले क़लमसे ढाँचा खींच लिया जाता है फिर उस पर छोटे छोटे निशान खोद दिए जाते हैं। इस प्रकारकी नकाशीमें कोई कोई शकल बहुत ही भद्दी बनती हैं जिसमें सिर पैरकी दूरी और प्रमाणका कुछ हिसाब ही नहीं रहता। नए तरज़ बिलकुल नहीं बनते। जयपुरके बेलबूटों और मूर्तियोंका सुडौलपन और मदुराके बने बेलबूटोंमें भी पाई जानेवाली बारीकी और सफ़ाई यहाँकी नकाशीमें बिलकुल नहीं पाई जाती कुछ दुकान-दार नए बरतनोंको दो एक महीने गाड़ देते हैं और फिर निकालकर अंग्रेज़ यात्रियोंके हाथ उन्हें सदियों पुराने कहकर बेंच लेते हैं। कुछ आश्चर्य नहीं कि इन खरीदारोंको दूकान-दारोंकी बातोंपर विश्वास हो जाता है क्योंकि सदियों पुराने ढङ्ग ही ठीक पहलेकी तरह अबतक भी चले आते हैं और कुछ उन्नति करनेका ध्यान भी नहीं होता। इस प्रकारकी नकाशी प्रायः बरतन बनानेवाले स्वयं ही करते हैं पर बहुतेरे ऐसे कारी-गर भी हैं जो केवल यही काम करते हैं। इन्हें तौल और नकाशीके तरज़के अनुसार मज़दूरी दी जाती है और ये लोग प्रायः आठ आने रोज़से अधिक ही पैदा कर लेते हैं।

उभाड़की नकाशी एक कठिन काम है और इसके ख़ास कारीगर हैं जिन्हें एक रुपया रोज़तक मज़दूरी मिलती है। इस प्रकारकी नकाशीमें ऊपरी सतहपर लाह लगाकर नीचेसे

पीटकर मूर्तियाँ इत्यादि उभाड़ी जाती हैं। फिर लाह निकालकर पालिश करदी जाती हैं। यह नकाशी भी अधिकतर पुराने ही ढङ्गपर है। लेकिन इसमें शिकार वगैरहके दृश्य अच्छे बनाए जाते हैं।

आम तौरसे पीतलका काम बनानेवाले स्वयं ही अपनी दूकानोंपर माल बेचते हैं। ठठेरी बाज़ारमें इन्हीं लोगोंकी दूकानें हैं। इनमें बहुतसे धनी भी हैं। दिवालीपर धनतेरसके दिन एक नुमायश या प्रदर्शिनी सी लगती है। उस दिन रातके समय दूकाने विशेष रूपसे सजाई जाती हैं। बड़े बड़े हण्डे परात आदि, पीतलके शिवालय और ताजमहल वग़ैरह निकाले जाते हैं। कितनी ही दूकानोंपर हजारों रुपयोंका माल दीख पड़ता है। उस दिन एक ऐसी चाल है कि प्रत्येक गृहस्थ कमसे कम एक नया बरतन अवश्य मोल लेता है। पर यात्रियोंकी भीड़ तो सालभर रहती है इससे यहाँ रोज़ ही धनतेरस मालूम होती है।

कसेरोंकी दशा प्रायः अच्छी ही है, पर ये लोग काम बहुत करते हैं। इन्हें आगके सामने बैठना पड़ता है और बाहर निकलनेका अवकाश कम मिलता है। इस कारण इनके शरीरमें दुबलापन और पीलापन प्रायः रहता है। इनके घरोंमें सफ़ाई रहती है और ये लोग अपने शरीरको भी नहा धोकर साफ़ रखते हैं।

५.

फल, साग-पात और घास बेंचनेवाले

हिन्दुस्तानमें बहुत से नगर ऐसे हैं जो अपने जलवायुके कारण किसी एक फलके लिए विशेषरूपसे प्रसिद्ध हैं। जैसे सन्तरोंके लिए नागपूर, सिलहट और बुटवल, लीचीके लिए मुज़फ़्फ़रपुर, सफ़ेदे और दसहरी आमके लिए मलीहाबाद, ख़रबूज़ेके लिए जौनपुर और लखनऊ और लँगड़े आमके लिए बनारस। पर प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जिस जगहकी जो प्रसिद्ध फल-फलहरी है वही उस जगह मिलती है और बाहरके प्रसिद्ध फल बहुत ही कम या केवल फ़रमायश हीसे मँगाये जाते हैं। परन्तु काशीका कुछ और ही हाल है। यहाँका लँगड़ा आम तो आमोंका राजा गिना जाता है और बहुत दूर दूर भेजा जाता है। यहाँतक कि समुद्र पारके देशोंमें भी ढेपीपर मोम लगाकर और शहदमें डालकर भेजा जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ सालभर दूर दूरके नगरोंके प्रसिद्ध फल और कभी कभी दूसरी ऋतुओंमें पैदा होने वाले फल भी बराबर बिकते हैं। और शहरोंमें नियत समयपर मंडी लगती है और उसी समय फल फलहरी मिल सकते हैं। पर यहाँ तो सूर्योदयके पहले हीसे लेकर रातके बारह बजेतक ये चीज़ें मिलती हैं, सो भी किसी एक स्थानपर नहीं बल्कि गली गलीमें।

फलोंके बेचनेका काम खटिक और कोयरी लोग करते हैं। इनमेंसे बहुतेरे ऐसे हैं जिनके पास निजके बाग़ हैं। वहाँके फल बाज़ारमें बिकते हैं अथवा बाहर रवाना किये जाते हैं।

जिनके पास बाग़ नहीं वे प्रायः अमीरोंके बगीचोंमें पैदा हुए फलोंके पकनेके पहले ही ठीकेपर ले लेते हैं और जबतक ऋतु नहीं बीत जाती और फल समाप्त नहीं होते तबतक उसी स्थानपर रहकर फलोंकी रखवाली करते हैं या उन्हें रखाते हैं। मालिक लोग कभी कभी रुपयोंके साथ यह भी तयकर लेते हैं कि इतने फल हम अपनी पसन्दके अनुसार नज़रके तौर-पर लेंगे।

ख़रबूज़े, आम इत्यादिके दिनोंमें दूर दूरके गाँवोंसे लोग ऊँट या बैल या भैंसेपर लादकर फलके ढेर बेंचनेके लिए बड़ी सट्टियों या मंडियोंमें लाते हैं वहाँ खटिक लोग थोकका सौदा करके सब माल ले लेते हैं और शहरमें घूम घूमकर फुटकर बेंच लेते हैं।

लीची, सन्तरे और आम बाहरसे रेलद्वारा मँगाये जाते हैं और सट्टियोंमें थोक ही बेंच दिये जाते हैं।

पञ्जाब और काबुलके फल जैसे अनार, सेव, नाशपाती, अंगूर इत्यादि खटिक लोग नहीं मँगाते। बहुतसे पञ्जाबी और काबुली मेवाफ़रोश इन चीज़ोंको मँगाते हैं। यहाँके खटिक इन्हीं लोगोंसे माल लेकर बेंचते हैं पर इनके दाम प्रायः अधिक ही होते हैं। कलकत्तेमें बनारसके बहुतसे व्यापारी जाकर बसे हैं जिनकी ओरसे बनारसी फलोंकी प्रायः माँग आती है। इसके अलावा और शहरोंसे भी माँग आती है। शिक्षाके अभावसे फल बेंचनेवाले खटिक वग़ैरह स्वयं माल बाहर नहीं रवाना कर सकते न बाहरसे आर्डर ही ला सकते हैं। बहुत-से कोठीवाले महाजन इन लोगोंसे बाज़ारदरपर या थोकमें कुछ सस्ते दामोंपर माल मोल ले लेते हैं और बाहर चालान भेजते हैं। बाहर ये फल बड़े मँहगे बिकते हैं। जैसे बड़े बना-

रसी बेर, जो सेरमें मान लिया जाय कि ५० चढ़े वे प्रायः दो आनेके सेरभरके हिसाबसे ख़रीदकर भेजे जाते हैं और बाहर कभी कभी पैसेके एक एक बिकते हैं। बाहरकी माँग ऐसी तेज़ रहती है कि बहुधा यहाँके अच्छे फल बाहर ही भेज दिये जाते हैं। शहरमें बचा हुआ माल मिलता है। फल और तरकारी फुटकर बेंचनेवाले बड़े चालाक होते हैं। जितनी माँग किसी चीज़की हो उसीके अनुसार दाम कहना इनमें विशेष रीतिसे पाया जाता है।

बनारसमें चार प्रसिद्ध सट्टियाँ हैं। चारोंमें चार दर पाये जाते हैं जिस सट्टीमें थोकका सौदा होता है वहाँपर फुटकर वेचनेवाले खटिक वाजिब दाम ही कहते हैं। इसके विपरीत भाव उस बाज़ारमें होता हैं जहाँ बङ्गाली ग्राहकोंकी अधिकता है। बङ्गाली बहुत तरसेसे होते हैं क्योंकि ये फल उनके देशमें नसीब भी नहीं होते अतः वे मुँह माँगा दाम देनेको तैयार हो जाते हैं। काशीमें प्रायः अमीर ही बंगाली लोग वृद्धावस्थामें काशीवासके लिए आते हैं। पैसा भी इनके पास खूब रहता है। मुँह माँगा दाम देकर इन्होंने अपनी सट्टीमें कलकत्तेकासा भाव मचा दिया है। इस जगह बहुत तेज़ दाम रहता है और यदि कोई साधारण हैसियतका आदमी वाजिब दाम लगाना चाहे तो ये खटिक लोग अपशब्द तकका प्रयोग कर बैठते हैं। यह प्रकार इनकी स्त्रियोंमें विशेष पाया जाता है।

ये लोग अपने सौदेकी बेहद तारीफ़ करने लगते हैं। सन्तरा चाहे कच्चेसे कच्चा और ख़राबसे ख़राब क्यों न हो मगर वह बुटवल या नागपूरका ही कहा जायगा। इनकी बातोंके अनुसार काबुल कन्धारको छोड़कर और कहींका

अनार ये बेंचते ही नहीं । ये मोल बेहद बता देते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि यहाँ बाहरसे यात्री बहुत आते रहते हैं। वे ठीक दाम क्या जानें। एक फल जो एक पैसेमें बिकना चाहिए उसका मूल्य आठ दस पैसे या इससे भी अधिक कहा जाता है।

इनकी स्त्रियाँ फल और सबज़ी बेंचती हैं। ये लोग टोकरीमें चीज़ोंको लिए हुए घूम घूमकर दिनभर बेंचती हैं। इनको "कबाड़ी" भी कहते हैं। चालाकीमें ये अपने पतियोंसे भी बढ़कर होती हैं। ये घर घर घूमकर तरकारी बेंचती हैं। घरकी पर्दानशीन स्त्रियाँ ठीक दाम क्या जानें। ये खटकिने उन्हें खूब ठगती हैं। इनकी तौल भी प्रायः ठीक नहीं होती। ठेंगा मारना या कम तौलना तो इनके बाँये हाथका खेल है। तिसपर भी तराज़ूमें पसंगा रहता है अर्थात् दोनों ओर एकसा झुकाव नहीं होता। बाँट या तौलनेकी नापके लोहे या पत्थरके टुकड़े भी ये लोग चालाकीसे काट कूटकर कम तौल कर लेती हैं। तिसपरसे यदि कोई इनकी तौल कम कहे तो उसे ये गालीतक देनेको तैयार होती हैं। सब लोग इतने समझदार नहीं होते कि इन्हें पुलीसके हवाले करें, अतः ये खुले आम इसी तरह बेंचती हैं।

इन्हें दिन भरमें ख़ासी आमदनी हो जाती है। चार छः आनेकी चीज़से ये लोग रुपये पैदा कर लेती हैं। काशीमें प्रायः नित्य ही एक न एक व्रत अथवा उत्सव लगा रहता है जिसमें ठाकुरजीको ऋतुफलका भोग अवश्य लगाना चाहिए। लोग मजबूर होकर ख़रीदते हैं ओर मुँहमाँगा दाम देना पड़ता है।

इन लोगोंके सम्बन्धमें एक बात बड़ी शोचनीय है। जिस

बाज़ारमें ये बैठकर सबेरे सौदा बेचती हैं उसी हलकेके पुलिस कानिस्टिबल इनसे मुफ़्में कुछ न कुछ अवश्य ले जाते हैं। बोलनेपर चालान करनेकी धमकी देते हैं और कभी कभी चालान कर भी देते हैं जिसमें इन बेचारोंको रुपया आठ आना जुर्माना हो जाता है।

बहुतसे खटिक लोगोंके पास अच्छी रक़म हो जाती है। अहीरोंकी तरह ये कमाते खूब हैं, पर इनका ख़र्च बहुत कम होता है। खानेको ये लोग रूखा और सादा अन्न खाते हैं और कपड़ा भी बहुत कम और मोटा पहनते हैं। आयकी मात्राके साथ व्ययका परिमाण बढ़ने नहीं पाता जैसा कि उच्च श्रेणीके लोगोंमें पाया जाता है। इन लोगोंका विशेष खर्च शराब और विवाहमें होता है। विवाहों पर नाचमें ये लोग बहुतसा धन फूँक देते हैं। इनके यहाँ विवाहके बाद बिरादरीको भोज दिया जाता है। सबको दाल भात इत्यादि खिलाना पड़ता है। कहीं कहीं शराब भी दिया जाता है। इसमें पचासों रुपये ख़र्च हो जाते हैं। पर इसकी अपेक्षा कई गुना अधिक धन नाचमें उड़ जाता है। इन लोगोंमें बालविवाहकी प्रथा प्रचलित है। गोदके बालकोंका भी विवाह संस्कार किया जाता है पर यदि दुर्भाग्यवश लड़की विधवा हुई तो उसका पुनर्विवाह हो जाता है। इन लोगोंमें एक पुरुषकी एकसे अधिक स्त्रियाँ होती हैं। इनमें शिक्षाका पूर्णतः अभाव है। ये लोग बड़े मेहनती और चालाक होते हैं।

इनकी अपेक्षा घास बेचनेवाले बहुत ग़रीब होते हैं ये लोग दिनभर घास काटकर लाते हैं तो दो तीन आने मिल जाते हैं। बरसातमें तो घास अच्छी तरह उगी रहती है पर गरमीमें इन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। कड़ी धूपमें ये

घास काटकर लाते हैं सो भी बहुत कम मिलती है इनसे घास प्रायः इक्के गाड़ीवाले ख़रीदते हैं। यदि कोई युवती स्त्री घास बेचती हो तो उसे घास ख़रीदनेके बहानेसे ले जाकर ये दुराचारी उससे क्रूरता और बलात्कार तक करनेको उतारू होते हैं। बेचारे ग़रीब कहाँ पुकार करें। ग़रीबीके मारे सब सहना पड़ता है। इन लोगोंको यदि कभी अधिक घास बेचकर रुपयेका नोट मिला तो इनको उसे रखनेमें कठिनाई पड़ती है। पानीके दिनोंमें छाता न होनेके कारण बहुतेरोंके नोट गल जाते हैं और सारी मज़दूरी पानीमें मिल जाती है। जब इन्हें नोट भुनाना पड़ता है तो मैला होनेके कारण दूकानदार इनसे कई पैसे काट लेते हैं। इनकी दशा शोचनीय है। इन्हें मुश्किलसे एक वक्त़ भरपेट भोजन मिलता है।

६.

मल्लाह

काशीमें गङ्गाजीका प्रवाह बहुत मन्द हो जाता है जिस कारण नावोंका चलना विशेष सुगमतासे होता है। हरिद्वार ऐसे शहरोंमें नदीका वेग इतना प्रबल है कि नावोंके चलनेमें एक तो बड़ी असुविधाएँ पड़ती हैं, दूसरे, जानका जोखिम रहता है। काशीमें घाट भी बहुत से हैं और उनके पक्के होनेके कारण अच्छी सीढ़ियोंके होनेसे ३,४ मील विस्तृत घाटकी श्रेणियोंमें हर जगह नावोंपर चढ़ने उतरनेका आराम है। रेलोंके बननेके पहले नावोंके द्वारा तिजारतका अधिकांश माल आता जाता था। अब भी चुनारगढ़से पत्थर और अन्य

स्थानोंसे भूसा, बालनेकी लकड़ी आदि सामान बड़े बड़े पटेलों-पर ही आता है। इस प्रकार सैकड़ों मल्लाहोंकी जीविकाका निर्वाह होता है। पर इस स्थानपर हम इन तिजारती माल लानेवाले मल्लाहोंका नहीं किन्तु नगरके मल्लाहोंका ही कुछ विवरण देंगे।

अस्सीघाटसे लेकर राजघाटतक क़रीब चार मीलकी लम्बाई-में प्रायः हर एक घाटोंपर आठ दस नावें पाई जायँगी। यदि नावोंको एक पंक्तिमें खड़ा किया जाय तो शायद उनकी पंक्ति चार मीलसे भी लम्बी होगी। इन नावोंमें बजड़े, पनसुइये और डोंगियाँ भी शामिल हैं। इनमेंसे बहुतसी नावें तो शहरके अमीरों की हैं जिनकी रखवालीके लिए और मालिकोंको पार ले जाने या नदीकी सैर करानेके लिए मल्लाह नौकर रहते हैं। इन मल्लाहोंको प्रायः चार पाँच रुपया महीना मिलता है। इतने द्रव्यसे ये अपना निर्वाह मुश्किलसे कर पाते हैं। इस लिए चोरीसे छिपे छिपे इन नावोंपर यात्रियों या दर्शकोंको घुमा फिराकर कुछ ऊपरसे भी पैदा कर लेते हैं।

काशीमें बाहरी तरफ़ जाना और पार जाना एक प्रसिद्ध बात है। शहरके इर्द गिर्द अनेक बाग़ बग़ीचे और कुएँ हैं इन कुओंमें कुछ तो ऐसे अच्छे हैं कि उनके जलसे अनेक रोग दूर हो जाते हैं। ये कुँए सब पक्के बने हैं। शहर इतना घना बसा है कि गलियोंमें स्वच्छ हवा मिलना कठिन होता है। इस कारण लोग सबेरे और अधिकतर सन्ध्या शौचा-दिकके लिए बाहरी तरफ़ या शहरके बाहरके बाग़ों या कुँओं-पर जाते हैं। इन बाहरी तरफ़ जानेवालोंमें बहुतसे प्रायः नित्य भाँग पीते हैं, पर बहुतसे ऐसे भी हैं जो केवल स्वच्छ वायु सेवनके लिए और पवित्र हलका जल पीनेके लिए ही जाते हैं।

जिन लोगोंको इतना समय नहीं रहता कि शहरसे २,३

मील बाहर जा सकें अथवा जो अस्वस्थता या अन्य कारणसे नहीं जा सकते वे प्रातःकाल सूर्योदयके पूर्व और सायङ्काल सूर्यास्तके बाद डोंगियोंपर गङ्गाजीके पार जाते हैं। इनमें भी बहुतेरे ऐसे भंगेड़ी होते हैं जिनका नावपर समय भाँग रगड़नेमें ही बीतता है। पार रेतीला मैदान है जहाँ लोग शौचादिक क्रियाओंसे निवृत्त होते हैं। इसीको पार जाना कहते हैं। गरमीके दिनोंमें बहुत लोग पार जाते हैं। एक तो दूर नहीं जाना पडता दूसरे ठंढी हवा मिलती है। बरसातमें नदीके बढ़नेसे पार जानेमें बड़ा ख़तरा रहता है और जाड़ेमें कड़ी सरदी पड़ती है, पर इन कठिनाइयोंके होते हुए भी कितने लोग सालभर नियमसे एक या दोनों समय पार जाते हैं।

इन नागरिकोंके अतिरिक्त शौचादिसे निवृत्त होनेके लिए बहुतसे दूसरे लोग भी पार जाते हैं। काशीमें हज़ारों यात्री नित्य बाहरसे आते हैं। इनमेंसे बहुतेरे गरमीके दिनोंमें पार ही जाते हैं जिनसे अनेक मल्लाहोंका पेट भरता है। मल्लाह प्रत्येक व्यक्तिसे पार आने जानेका तीन पैसा लेता है जिसमेंसे एक पैसा सरकारी महसूल या चुंगी देना पड़ता है।

पार आने जानेके अलावा बहुतेरे नाववाले यात्रियोंको नावपरसे प्रत्येक घाटोंका अपूर्व दृश्य दिखलाकर अच्छी रकम कमा लेते हैं।

• काशीके पार महाराज बनारसकी राजधानी और रामनगरका क़िला है। माघमें वेदव्यास नामका एक मेला भरा करता है। महीनेभर अधिकतर प्रत्येक सोमवारको नागरिकोंमें हर एक श्रेणीके लोगोंके झुण्डके झुण्ड रामनगरमें या उससे तीन मीलपर व्यासजीके मन्दिरमें दर्शन करने जाते हैं। दोनों

स्थानोंपर महर्षि वेदव्यासके मन्दिर हैं और दोनों नदीके पार हैं। इससे भी जाड़ेमें मल्लाहोंको अच्छी आमदनी रहती है। दर्शनका तो नाम है पर वस्तुतः एक अच्छी सैर ही हो जाती है। लोग खेतोंमेंसे होकर जाते हैं और वहाँसे हरे चने या मटर खाते हैं। रास्तेमें कई ईख रस निकालनेवाले कोल्हू भी हैं जहाँ लोग रस पीते हैं। प्राकृतिक दृश्यका तो कुछ कहना ही क्या। मौसिम भी ऐसा अच्छा रहता है कि न जाड़ा ही मालूम होता है और न गरमी ही। वस्तुतः ऐसे मेलों आदि-को देख कर यह विचार आता है कि हमारे पूर्वज केवल वेदान्तहीमें नहीं रमा करते थे, प्रत्युत वे संसारका भी यथार्थ आनन्द लेते थे।

चैतके महीनेमें प्रसिद्ध बुढ़वा-मङ्गलका मेला लगता है। इस मेलेमें कई दिनोंतक बड़ी बड़ी नावोंपर नाच गाना होता है। दर्शकोंकी बड़ी भीड़ लगती है और मिठाईवालोंतककी नावें घूमती हैं। सब सामग्री नावपर मिल ही जाती है। लोग कई दिनोंतक नावपर ही रहते हैं। शौचादिके लिए पार जाते हैं। वेदव्यासके मेलेमें लोग सकुटुम्ब जाते हैं, पर बुढ़वामङ्गल केवल पुरुषोंहीका मेला है। इस मेलेमें मल्लाहों-को सबसे अधिक आमदनी होती है। अच्छे बजड़ोंका दो तीन दिनोंका किराया सैकड़ों रुपयोंतक हो जाता है। दस पन्द्रह वर्ष पहलेतक यह मेला बहुत अच्छा हुआ करता था। दूर दूरके लोग इस अवसरपर आते थे और बहुतसे सभ्य लोग इसमें भाग लेते थे। पर समयानुसार यह मेला बड़ी बुरी गतिको पहुँच गया है। अब तो इसमें प्रायः व्यसनी लम्पट और भाँड़ लोग ही दीखते हैं। मल्लाहोंको इन्हीं स्थानोंसे आमदनी होती है, पर इनकी संख्या इतनी बढ़ गई है कि इनका पेट केवल मल्लाहीसे

ही नहीं भर सकता। इसके अतिरिक्त बर्षामें और जाड़ेमें बहु-तेरे मल्लाहोंको मज़दूरी करके पेट पालना पड़ता है।

मल्लाह लोग अपने बालबच्चोंको नावपर नहीं रखते। ये लोग प्रायः घाटोंसे कुछ ही दूरपर झोपड़ोंमें रहते हैं। इनकी स्त्रियाँ प्रायः हाथसे चक्कीके द्वारा आँटा पीसती हैं और समय-पर खरबूजे आदिके बीजोंको छीलकर बेचती हैं। बरसातमें केवाँच नामक मटरके सदृश एक फल बहकर आता है। उसे भी जमा करके बेचती हैं। शहरके बाहर रहनेवाली मल्ला-हिने मछली मारकर शहरमें बेंचने लाती हैं। इस वस्तुका प्रयोग बंगाली लोग बहुत करते हैं। बंगालियोंमें ब्राह्मणसे लेकर शूद्र-तक मछली खाते हैं। इससे भी अच्छी आमदनी होती है। बहुत सी स्त्रियाँ और प्रकारकी मज़दूरी भी करलेती हैं।

मल्लाह लोग मेहनती तो बहुत होते हैं और कमाते भी अच्छा हैं, पर इनमेंसे अधिकांश शराबके व्यसनी होते हैं। इनकी मज़दूरीका बहुत सा अंश इस प्रकार फुँक जाता है। इन्हें दुर्दिनके लिए बचाकर रखनेकी आदत बहुत कम होती है यहाँतक कि कुछ तो ऐसे गए गुजरे होते हैं कि सुरादेवीके सामने अपने बालबच्चोंकी भी सुध नहीं लेते।

बरसातमें और ढालेके दिनोंमें जब काम नहीं मिलता तो ये लोग संगतराशीका काम करते हैं। काशीमें प्रायः पक्के पत्थरके ही मकान बनते हैं, क्योंकि चुनारसे जो नदीद्वारा ८-१० मीलहीपर है सस्ता और अच्छा पत्थर मिलता है। इससे संगतराशोंकी माँग सदा ही रहती है और इन्हें मजदूरी भी अच्छी मिलती है। आठ दस आने तो रोज साधारण रीति-से मिल जाते हैं। बेलबूटे आदिके लिए अधिक भी मिलता है।

जिनसे यह काम नहीं होता वे पेसराजी या मकान बनानेका काम करते हैं।

७.

गुमाश्ते और मुनीम

जिस प्रकार अङ्गरेज़ी दूकानोंपर क्लार्क और खज़ानची आदि होते हैं उसी प्रकार हिन्दुस्तानी ढङ्गपर व्यवहार करनेवाली कोठियों और दूकानोंपर मुनीम और गुमाश्ते होते हैं। ये लोग बनारसी माल और साधारण कपड़ोंकी बड़ी कोठियों और दूकानोंपर, ग़ल्ले, घी, चीनी आदिकी आढ़तोंपर और बड़े बड़े बिसातियों और अन्य व्यापारियोंकी दूकानोंपर पाये जाते हैं। ये लोग उच्च जातिके होते हैं जैसे ब्राह्मण, खत्री, गुजराती। इनमें धार्मिक भाव विशेषतासे पाया जाता है और यद्यपि इनकी आन्तरिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय है, तथापि इनके सभ्य व्यवहार, आत्मगौरव और स्वच्छतासे यही प्रतीत होता है कि ये रईस हैं और कमसे कम इनकी आमदनी सौकी अवश्य होगी, पर यथार्थमें इनका वेतन इतना कम होता है कि कठिनतासे दोनों समय भोजन मिलता है। मुनीमोंको बीससे लेकर साठतकका वेतन मिलता है और वे विशेष विश्वासपात्र होते हैं यहाँतक कि मालिककी अनुपस्थितिमें वही सब कामोंकी देख रेख करते हैं। गुमाश्ते ऊपरी सब काम करते हैं जैसे माल लाना या पहुँचाना, रखना उठाना, लहना तक़ाजा इत्यादि। इनका

वेतन १०, १२ या हद्द १५ रुपया मासिक होता है। काम इन लोगोंको ग्यारह बारह घण्टे रोज़ करना पड़ता है। प्रातः-काल ७ या ७॥ बजे दूकान खुलनेसे दोपहर बारह बजेतक और सन्ध्या तीन बजेसे ६॥ या १० बजे दूकान बन्द होने-तक। दशमी, दीवाली, होली या और बड़े तेहवारोंपर जब दूकान बन्द रहती है तब इन्हें छुट्टी रहती है जिसका वेतन काटा नहीं जाता इसके अतिरिक्त प्रति एकादशीको भी बाज़ार बन्द होनेके कारण इनको छुट्टी रहती है। इन लोगोंका मालिकके साथ कुटुम्बके परिजन सा व्यवहार रहता है और विवाह आदि या अन्य समयोंपर छुट्टीके दिनोंमें भी कोठीका या मालिकके घरका कामकर देते हैं। यदि कहीं दुर्भाग्यवश ये बीमार पड़े तो मालिकसे जो दवा आदिका प्रबन्ध हुआ तो कुछकर देते हैं अन्यथा दस पाँच रोज़के नागे या अनुपस्थितिका वेतन नहीं काटते। सालमें एक मासका वेतन (इनाम) या पुरस्कारकी तरह जड़ावर करके दिया जाता है। बड़े बड़े तेहवारोंपर बँधी हुई आठ आने या रुपये की तेहवारी भी मिलती है। आढ़तोंमें तौलाई (जो प्रायः दो बोरोंके लिए एक पैसा होती है) और मुनीमी आदि भी मिलती है। मुनीम और गुमाश्तोंका वेतनके अतिरिक्त धना-गमका और कोई मार्ग नहीं। हाँ कहीं कहीं अवकाश और सुयोग मिलनेसे दलालीद्वारा भी कुछ प्राप्त हो जाता है। ये लोग हिन्दी और मुड़िया या कोठीवाली लिपि अच्छी तरह जानते हैं और व्यवहारमें बड़े पटु होते हैं। कई तरहकी बही रोकड़ आदिके द्वारा कौड़ी कौड़ीका हिसाब बड़ी सफ़ाईसे रखते हैं। सट्टे बट्टेमें भी इनकी बुद्धि खूब चलती है और कोई कोई मुनीम तो इतने कुशाग्रबुद्धि होते हैं कि कोठीकी अनेक

शाखाओंका प्रबन्ध एक विशेषज्ञ अङ्गरेज़से भी बढ़कर करते हैं।

अब इन लोगोंके घरोंकी व्यवस्था देखनी चाहिए। पहले गुमाश्तोंके विषयमें विचार करेंगे इनका अनुमानिक मासिक व्यय प्रायः इस प्रकार है।

१॥) किराया
८) अन्न (अच्छा चावल, दाल, गेहूँ)
१) मज़दूरनी
२) लकड़ी
४) तरकारी, तेल, मसाला
३) कपड़ा
३) धर्म-कर्म।

२२॥)

इनके रहनेके मकान प्रायः साफ़ सुथरे होते हैं। छूत छात और पवित्रताका विशेष ध्यान रहता है। पुरुष और स्त्री अलग कोठरियोंमें रहते हैं और रातको अलग सोते हैं।

अन्न ये लोग अच्छा खाते हैं और प्रायः मातबरीवाले मन्दी बाज़ारके समय एक आध बोरा अन्न उधार लेकर रख लेते हैं और धीरे धीरे महीनेके महीने दाम चुकाते जाते हैं। कभी ऐसा नहीं सुना गया कि अमुक मुनीम या गुमाश्ता अन्नवाले का दाम हज़मकर गया या लेकर भाग गया। अनाजवाले-इनसे मालकी कोई रसीद नहीं लेते क्योंकि इनकी बातपर विश्वास करते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि ये लोग हिसाब किताबमें बहुत चतुर होते हैं इस कारण बाज़ारसे समझ बूझकर सौदा लेते हैं और शायद ही कभी ठगे जाते हैं।

मज़दूरनीके विषयमें इनको बड़ा कष्ट रहता है। ये लोग प्रायः पक्के महालोंमें गङ्गातटके पास ही रहते हैं और गङ्गाजल पीते हैं। घरपर भी बरतन माँजना स्त्रियाँ अपने हाथसे नहीं कर सकतीं क्योंकि ग़रीबीकी दशामें भी इनकी इज्ज़त रहती है। पर बहुतेरे घरोंमें बरतन माँजना इत्यादि तो स्त्रियाँ स्वयं-कर लेती हैं पर जलका प्रबन्ध बहुत ज़रूरी होता है। नलका पानी उच्च जातिके धार्मिक भाववाले लोग बहुधा नहीं पीते। मज़दूरनीको ये एक रुपयेसे अधिक नहीं दे सकते जिस वेतन-पर वह एक वक्त बरतन माँजती है और एक दिन छोड़कर एक हण्डा गङ्गाजल लाती है। मज़दूरनी धोती इत्यादि नहीं धोती और महीनेमें सात आठ दिन नागा करती है। सालमें इसे एक धोती भी देनी पड़ती है।

मांसादि भोजनका ये लोग बिलकुल व्यवहार नहीं करते यहाँतक कि यदि घरमें मांस किसी तरह आ जाय तो उस स्थानको धोते हैं। इस कारण इन लोगोंको शाक भाजीकी आवश्यकता होती है, पर बहुतसे बेचारे ग़रीबीके कारण यह भी नहीं कर सकते। घी दूध इतने मँहगे हैं कि उनका सेवन ये लोग बिल्कुल ही नहीं कर सकते। कभी कभी तो बेचारे गोदके बच्चोंको भी दूध नहीं मिलता। घी कुछ थोड़ासा अवश्य आता है जो तरकारी छौंकने या दालमें एकाध छींटा डालनेके काम आता है। थोड़ेसे लोग तो तेलको घीकी तरह काममें लाने लगे हैं।

ये लोग कपड़ा बाहरके लिए साफ़ सुथरा रखते हैं। मर्द लोग एक जोड़ा धोती, कुरता, दुपट्टा और दुपल्ली टोपी कोठी आनेके लिए रखते हैं। और स्त्रियाँ एक जोड़ा साफ़ धोती चद्दर बिरादरीमें जानेके लिए रखती हैं। घरपर स्त्रियाँ पुराने

वस्त्रसे गुज़ारा करती हैं पर अन्य जातियोंकी तरह बहुत जोड़जाड़कर कपड़ा पहिनना अपमानसूचक समझती हैं। रातको जाड़ेके दिनोंमें बहुतसे घरोंमें लोग टाट, दरी या सादा चादरा ओढ़कर समय बिताते हैं। कपड़ेकी मँहगीके कारण रज़ाई, लिहाफ़ बड़े दामोंमें बनने लगे हैं। इनके वस्त्र प्रायः पुरानी चालके होते हैं और साफ़ रहते हैं।

जैसा ऊपर कहा गया है इनमें धार्मिक प्रवृत्ति विशेष होती है। प्रायः नित्य ही एक न एक व्रत या तेहवार लगे रहते हैं। इनमेंसे अधिकांश लोग नित्य गंगास्नान और दर्शन पूजनमें कई घंटे लगाते हैं। प्रायः हरेक घरोंमें ठाकुरजीकी मूर्तियाँ होती हैं जिनकी रोज़ पूजा होती है और भोजन भी पहले पहल उनको भोग लगालेनेपर प्रसादभावसे खाया जाता है। जन्म, मरण आदिमें इनके यहाँ ख़र्च पचासोंतक साधारणतः पहुँचता है और विवाह तो पाँच छः सौसे कममें कभी होता ही नहीं। दहेजकी प्रथा तो नहीं पर टीके, अलूफ़े, ज़ेवर और पदमें ख़र्च बहुत पड़ जाता है। बीमारी, विवाह या अन्य कार्योंके लिए इन्हें ज़ेवर बेंचना पड़ता है या गिरवी रखकर कुछ रुपया उधार लेना पड़ता है। पर इस प्रकारसे कितने दिनतक निर्वाह हो सकता है? परमात्मा ही किसी न किसी तरह इनकी इज़्ज़त निबाहता है।

इनके घरकी स्त्रियाँ कभी कभी क़सीदा काढ़ती हैं, पर यह बहुत कम पाया जाता है और जो अति ग़रीबीके कारण क़सीदा काढ़ती भी हैं उन्हें दिनभर भोजन आदि तैयार करनेके समयको छोड़कर काम करनेपर चार छः पैसे ही मिलते हैं। बीचवाले लोग और मज़दूरी खा जाते हैं। इस

व्यवसायका यदि सुप्रबन्ध हो जाय तो अनेक विधवाओं और अनाथोंके उदरपूर्तिका ठिकाना हो जावे।

अकालके दिनोंमें इस श्रेणीके लोगोंकी जो दुर्दशा होती है सो वर्णनातीत है। ये किसीसे माँग नहीं सकते और मुहताजीका अन्न आदि भी नहीं ले सकते। ऊपरसे तो किसी तरह इज़्ज़त ढँके रहते हैं, पर घरोंपर एक समय आधा पेट भोजन करके या दिनभर उपवास करके अपने जीवनके दिन पूरे करते हैं। नीच जातिके लोग तो सब तरहकी मेहनत मज़दूरी करके कुछ न कुछ कमा ही लेते हैं, पर ये बेचारे यह सब काम भी नहीं कर सकते।

मुनीम लोग जो इनसे अधिक वेतन पाते हैं कुछ ही अच्छी अवस्थामें होते हैं। वे लोग कुछ घी दूधका सेवन कर सकते हैं और जड़ावर और कपड़े अच्छे बनवा सकते हैं। तेहवारोंपर और मेहमानदारीमें भी वे कुछ अधिक ही ख़र्च करते हैं और अधिक कियायेके मकानमें रहते हैं। इन लोगोंके घरकी स्त्रियाँ "बहूजी" पुकारी जाती हैं और अपने हाथसे बरतन आदि कभी नहीं माँजतीं। प्रसवके उपरान्त सौरीके चालीस दिनोंमें इनके यहाँ स्त्रियोंको कुछ पौष्टिक घीके पकान्न दिये जाते हैं। इन सब ख़र्चोंके कारण प्रायः ये लोग करज़दार ही रहते हैं।

८.

कचहरीके चपरासी और मुंशी

कचहरीके अनेक विभाग होते हैं पर उनमें दीवानी फ़ौजदारी और रजिस्टरी प्रधान कहे जा सकते हैं। इनके दफ़्तरोंका

काम रुपयेमें पौने सोलह आने इस देशके लोग करते हैं। सबसे बड़े अफ़सर अधिकतर अँगरेज़ ही होते हैं जिनकी तनख़्वाह इतनी अधिक होती है कि जितनी पचासों देशी मुंशियोंकी तनख्वाहें मिलाकर भी न हों।

चपरासियों और मुंशियोंका वेतन पाँच छः रुपयेसे लेकर पचास साठ रुपये महीनेतक होता है और शायद सैकड़ोंमें एक आध सौ रुपयेतक पहुँचते हैं।

चपरासियोंका अधिकसे अधिक वेतन दस बारहतक होता है और इनकी संख्या कचहरीके नौकरोंमें प्रायः २५ फ़ी सदी होती है। काम इनको प्रायः दिनभर करना पड़ता है और इधरसे उधर जाते हुये कमसे कम इनको कई मीलका चक्कर लग जाता है। इनकी शकल सूरतसे यही प्रतीत होता है कि ये भूखे और थके हुए हैं अंगोंके साथ साथ कपड़े भी पुराने उतरे और मैले कुचैले दिखलाई देते हैं। जिसको तनिक भी अधिकार है उसके प्रति ये नितान्त नम्रताका व्यवहार करते हैं। कारण इसका यह है कि इस विभागमें हर एक पदाधिकारी "पीछे समझ लेने"की धमकी बराबर देता रहता है और राज्यप्रबन्धके अनुसार कोई निर्भय नहीं रहता क्योंकि एककी शिखा दूसरेके हाथमें होती है। इनकी इस प्रकार नम्रताकी दशापर विचारकर दया आती है, पर यह इनका सदाका भाव नहीं। जहाँ इनको मौक़ा मिला वहाँ ये क्रूरसे क्रूर हो जाते हैं और बैलसे भी दूध दुहना चाहते हैं। इनका सम्बन्ध प्रायः दफ़्तरोंकी अधीन प्रजासे पड़ता है जिससे वे पद पदपर इनाम और दस्तूरी तलब करते हैं। इनकी इस प्रकारकी क्रूरताका मौलिक कारण कम वेतन ही है। जब इनका पेट भी इस कम तनख़्वाहमें नही भरता तो आत्महनन करके घूसखोरीमें लग

जाते हैं। फिर चाहे कितने भी अमीर क्यों न हो जावें यह आदत नहीं जाती। चपरासीका काम ब्राह्मण, क्षत्रिय, अहीर, कहार और मुसलमान करते हैं।

मुंशियोंमें कई श्रेणियाँ हैं जिनके वेतन जुदे जुदे हैं। यह एक आश्चर्यकी बात है जिसे जितना काम अधिक होता है उसे उतना ही कम वेतन मिलता है। आठ आठ दस दस घण्टे लिखनेवाले मुंशियोंको प्रायः इतना भी नहीं मिलता कि सुखसे जीवनयात्रा चलना तो दूर रहा पेटभर भोजन भी मिल सके। अधिकांश मुंशी कुलियोंसे भी कम वेतन पाते हैं, पर आत्मसम्मानके भयसे यह प्राणघातक नौकरी करनी ही पड़ती है। क्या आश्चर्य है कि ये लोग घूस भी लेते हों। "नाहमस्मीति साहसम्"से तो यह भी अच्छा ही है। कहनेको तो इनके कामका समय दससे चार बजेतक है, पर यथार्थमें ये आठ आठ दस दस बजे राततक भी कभी कभी काम करते हैं और प्रायः रोज़ ही घरू काम (Home task) की तरह घरपर भी पोथा लाद कर ले जाते हैं।

आफ़िसकी प्रथाके अनुसार इन्हें अङ्गा, पायजामा या कोट पतलून पहनकर आना पड़ता है, पर इनमें बहुतसे इतने ग़रीब हैं कि घरपर तो एक धोती पहनकर गुज़र करते हैं, पर दफ़्तरमें एक जोड़ा कपड़ा और जूता पृथक् रखते हैं जो सबेरे आकर पहन लेते हैं और तब काम करते हैं।

मुंशियोंमें तिहाई तो क़रीब १५ रुपये महीने पाते हैं। बाक़ी २० और २५ के बीचमें पाते हैं और बिरले ही पचाससे ऊपर सौतक पहुँचते हैं।

ऊपरकी बातोंसे इनका कचहरीका जीवन कुछ मालूम हो गया होगा अब इनके घरोंका हाल देखना देखना चाहिए।

१. चपरासी

चपरासियोंमें बहुतसे ऐसे हैं जिनकी गाँवोंपर कुछ ज़मीन होती है, जिसका प्रबन्ध इनके घरके दूसरे लोग करते हैं। ऐसे लोग प्रायः अपने बालबच्चोंको गाँवहीपर छोड़ आते हैं और जो कुछ बचा सकते हैं उनके भरणपोषणके लिए बराबर भेजते जाते हैं। अन्न वग़ैरह तो खेतीसे मिलता है, पर घरपर दो रुपया महीना जो ये भेजते हैं वह कपड़ोंमें या रीति रस्ममें ख़र्च हो जाता है। बहुतेरे अपने बालबच्चोंके साथ रहते हैं। अब क्योंकि हमें एक कुटुम्बके आयव्ययका सम्बन्ध देखना है इसलिए एक ऐसा उदाहरण लेना ठीक होगा जिसमें एक चपरासी अपने कुटुम्ब सहित शहरमें रहता है। मान लिया जाय कि किसी कुटुम्बमें कमाने वालेके अतिरिक्त एक स्त्री और तीन बच्चे हैं और उसकी आमदनी केवल ६) रुपया महीना है। मोटी तौरसे विचार करनेमें मासिक व्यय कुछ निम्नलिखित सा होगा।

६) अन्न (मोटा चावल, दाल, जौ)
१) लकड़ी, नमक।
॥) तेल।
॥) किराया।
३) आफ़िसके लिए कपड़े, जूते और स्त्रियोंकी धोतियाँ और जड़ावर।
१) बालकोंके लिए।
३) धार्मिक कार्योंमें, अतिथि सत्कारमें और नातेके सम्बन्धमें।
१) अन्य आवश्यक ख़र्च।
―――
१६)

इस प्रकारसे १०) हर महीनेमें कम पड़ता है यह कहाँसे लाना पड़ता है सो सब जानते हैं। अब ज़रा विचार करना चाहिए कि कोई कैसे ईमानदारीसे इतने अल्प वेतनपर निर्वाह कर सकता है। कुछ लोग कह सकते हैं कि कपड़े लत्तों और धार्मिक रीति रिवाजोंमें अधिक जोड़ा गया है पर उन्हें यह न भूलना चाहिए कि यह व्यय प्रतिमास नहीं होता बल्कि सालके हिसाबसे प्रतिमास इतना पड़ जाता है।

उपर्युक्त अनुमानमें जन्म, विवाह, मरण, बीमारी और शिक्षाके विषयमें कुछ जोड़ा ही नहीं गया है। जन्मके समय कमसे कम १० रुपया खर्च होता है जिसमेंसे कुछ अंश उत्सव रूपमें लगता है। विवाह कमसे कम डेढ़ दो सौमें होता है और ब्राह्मणोंमें तो इससे भी अधिक ख़र्च पड़ता है।

मृत्युमें कमसे कम पचीस रुपये लगते हैं जो कफ़न फूंकनेकी लकड़ी, श्राद्ध, महाब्राह्मण, दसवां, भोज इत्यादिमें ख़र्च हो जाता है।

बीमारीमें इनकी बड़ी बुरी, दशा होती है। पासमें पैसा नहीं होता जो दवा ले सकें। इतनी शक्ति नहीं कि हस्पताल तक पैदल या सवारीपर (जिसका ख़र्च नहीं दे सकते) जा सकें। और यदि गये भी तो बड़ी कठिनतासे दवा मिलती है। एक ही बिछौना ओढ़ना होनेके कारण रोग औरोंमें भी फैल जाता है और प्लेग आदिके समय प्रायः सारा घरका घर साफ़ हो जाता है।

यदि कोई लड़का पढ़ रहा हो तो ग़रीबीके कारण उसे अधिक शिक्षा भी न मिल सकेगी और जबतक मिलेगी तबतक कमसे कम २ रुपया महीना तो उसपर अवश्य व्यय होगा।

अत्यन्त धन संकटके समय ये लोग उधार लेते हैं वह या

तो ज़मीन हुई तो उसे गिरवी रखकर लेते हैं या किसीकी मातबरीपर लेते हैं। सूदकी दर साढ़े बारह रुपया सैकड़ासे लेकर ३० रुपये सैकड़ा सालतक होती है।

इनकी स्त्रियाँ घरका सब काम भोजन, बरतन साफ़ करना, पानी भरना आदि सब अपने हाथसे ही कर लेती हैं।

जाड़ेमें इन लोगोंकी नितान्त दरिद्रताका विशेष परिचय मिलता है। कुछ लोग तो पुआरमें घुसकर कुत्ते या अन्य पशुओंकी तरह किसी तरह रात काटते हैं। कुछ टाट या पुराने कम्बलोंको ओढ़ते हैं और कुछ बेचारोंके यहाँ केवल धोती या चद्दर ओढ़कर रात काटी जाती है।

(२) मुंशी

मुंशी लोगोंमेंसे हम दो प्रकारके कुटुम्बोंके खर्चका अनुमान करेंगे। एक तो उनका जिनकी आमदनी पन्द्रह रुपये महीना हैं और दूसरे उनका जिनकी आय तीस पैंतीस रुपये होती है।

पन्द्रह रुपयेवालेका खर्च कुल इस प्रकारका होता है:—

८) अन्न (मोटा चावल, दाल, गेहूँ)
२) लकड़ी
१) तेल
१) मसाला
२) लड़कोंको
५) कपड़ा
३) मेला त्यौहार
५) धर्म कर्म, अतिथि इत्यादि
३) किराया
———
३०)

अतः इनकी आमदनी भी खर्चसे लगभग पन्द्रह रुपये कम होती है। इन्हें अपनी मान मर्यादाका कुछ ध्यान रखना पड़ता है इसलिए ऊपरसे देखनेमें अच्छे घरोंमें रहते हैं और यथा सम्भव अच्छा कपड़ा पहनते हैं। यदि ऊपरी आमदनी अच्छी हुई तो इनके घरका काम करनेके लिए मज़दूरनीकी भी आवश्यकता पड़ती है। बालकोंकी शिक्षामें भी इनका व्यय अधिक होता है। जन्म, विवाह और मरणमें क्रमशः १५) ३००) और १००) का खर्च होता है। विवाहमें दहेज भी देनी पड़ती है और विवाह, ग़मी इत्यादिमें बिरादरीको भोज भी देना पड़ता है।

इतनी ऊपरी आमदनी होनेपर भी इनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है और इनमें बहुतेरे बराबर ऋणके चंगुलमें फँसे ही रहते हैं। ये लोग जड़ावर रुईके कपड़ोंकी बनवाते हैं और ओढ़ना बिछौना कुछ अच्छा रखते हैं।

तीस पैंतीस रुपयेकी आमदनीवालेका ख़र्च इस प्रकार होगा :—

१०) अन्न (साधारण चावल, दाल, गेहूँ)
५) किराया
३) लकड़ी
२) तेल
५) घी, मसाला, तरकारी
३) बालकोंको
८) बालकोंकी शिक्षा
१२) कपड़ा (मर्दाना, आफ़िसका, स्त्रियोंका, लड़कोंका, जड़ावर)
८) धर्म-कर्म, अतिथि, तेहवार

२) मेला-तमाशा
२) अन्य आवश्यक खर्च

---

६०)

यहाँ भी खर्च प्रतिमास वेतनसे पचीस तीस रुपया अधिक ही होता है। तिसपर भी ध्यान देना चाहिए कि इस श्रेणिके लोग भी घी दूधका सेवन नहीं कर सकते। काम इनको दस बारह घण्टा नित्य करना पड़ता है और दिमाग़को ताक़त देनेवाला भोजन प्रायः कुछ मिलता ही नहीं। परिणाम यह होता है कि ये लोग शरीरसे केवल अस्थिपञ्जर मात्र दीखते हैं। उच्च श्रेणीके होनेके कारण इनको जन्मविवाह आदिमें परजों या आश्रितोंको धोती कपड़ा आदि भी देना पड़ता है और विवाहमें दो ढाई सौ रुपये केवल दहेज रूपमें प्रदान करने होते हैं। विवाहमें (चाहे लड़की या लड़केका हो) कमसे कम पाँचसौ रुपए व्यय होते हैं। कभी कभी तो इन्हें अनुरोधसे नाच भी कराना पड़ता है।

इनकी दशापर हमें घृणाकी अपेक्षा दया करनी चाहिए क्योंकि जो कुछ अनुचित कार्य ये करते हैं, वह अत्यन्त पीड़ित होकर करते हैं तिसपर भी इन्हें ऐसे कामसे सदा भय ही लगा रहता है। वर्तमान मँहगीसे इन लोगोंको जो जो कष्ट सहने पड़ते होंगे उन्हें पाठक स्वयं विचार सकते हैं। विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं।

९.

मज़दूरनी

नौकरोंकी कमीके विषयमें ऊपर विचार किया जा चुका है पर जिस प्रकारकी तकलीफ़ उनके बिना पाई जाती है इससे कहीं बढ़कर तकलीफ़ मज़दूरनियोंके न मिलनेसे होती है। नौकर लोग ऊपरी काम ही करते हैं जैसे बाज़ारसे चीज़ें लाना इत्यादि, पर घरका असली काम चौका साफ़ करना और बरतन माँजना, पानी भरना आदि वह केवल मज़दूरनी ही करती है। नौकरोंका काम मध्यमश्रेणीके लोग अर्थाभावसे स्वयं भी कर सकते हैं। बाज़ारसे चीज़ें लानेमें विशेष अपमान नहीं गिना जाता। पर मज़दूरनीका काम घरकी स्त्रियाँ या पुरुष कोई भी नहीं कर सकते। यदि मानापमान या द्रव्यका ख्याल न किया जाय तब भी यह ज्ञात होगा कि चौका बरतनका काम अपने हाथसे होना मुश्किल है।

नौकरोंकी तरह मज़दूरनियोंको भी अन्यत्र अधिक वेतन मिलता है या थोड़ेसे परिश्रमसे अच्छा वेतन मिलता है जिसके कारण वे मध्यमश्रेणीके लोगोंके यहाँ जो पूर्ववत् वेतन दे सकते हैं, काम नहीं करतीं। अमीरोंमें भी उन्हीं लोगोंको मज़दूरनी मिलती हैं जो पहलेके एक रुपयेके स्थानमें छः सात रुपया महीना, कुछ भोजन और सालमें एकाध बार वस्त्र भी देते हैं।

इस शहरमें मज़दूरनियोंका वेतन इतना बढ़नेके कारण अमीर बंगाली और मारवाड़ियोंका आकर बसना ही है। ये लोग कलकत्ते बम्बईकी तरह भारी वेतन देते हैं जिससे उन्हें

तो मज़दूरनी जितनी चाहें उतनी मिल जाती हैं, पर अन्य नियमित वेतनवाले मध्यम श्रेणीके लोगोंको नहीं मिलतीं। इन लोगोंकी मज़दूरनियाँ प्रायः दूसरी जगह काम नहीं करतीं और मालिकके साथ शहरके बाहर भी जाती हैं।

यह तो पहला कारण हुआ, पर इसके सिवाय अन्य भी कई कारण हैं जिनपर अब विचार करना चाहिए।

नौकरोंके विषयमें कहा जा चुका है कि जब इनके पास कुछ द्रव्य हो जाता है या इनका कोई सम्बन्धी उच्चपदपर नौकर हो जाता है तो ये लोग अपनेको उच्च जातिका कहना चाहते हैं और धोती धोना इत्यादि कामसे इन्कार कर देते हैं। यह तो हुआ पुरुषोंपर असर। अब स्त्रियोंका यह हाल होता है कि यदि उसका मालिक या पुत्र कुछ अधिक कमाने लगे तो ये लोग मज़दूरनीका काम बन्द कर देती हैं और यदि कुछ काम करती भी हैं तो अमीरोंकी स्त्रियोंके यहाँ बैठने उठनेका ही काम करती हैं। इस प्रकार ज्यों ज्यों नौकरोंकी आमदनी बढ़ती जाती है त्यों त्यों मज़दूरनियाँ कम होती जाती हैं।

कलाबत्तूके विषयमें यह भी कहा गया है कि आजकल इस कामका पुनरुद्धार हो रहा है। इसमें कुछ काम तो इस शहरमें मशीनों द्वारा होता है पर अधिकतर काम और प्रायः सब सस्ते दामका घटिया माल मज़दूरनियोंके द्वारा तैयार होता है इसमें इन्हें चार छः आना रोज़तककी आमंदनी हो जाती है। काम प्रायः अपने घरपर करती हैं, पर कभी कभी कारख़ानेदारके मकानपर भी करती हैं। इस कारणसे बहुतेरी मज़दूरनियाँ चौका बरतनका काम छोड़कर कलाबत्तू बनाती हैं। कलाबत्तूके अतिरिक्त सलमा, सितारा, गोखेरू इत्यादिका काम भी अधिकतर ये ही स्त्रियाँ करती हैं।

इसके अतिरिक्त डीपोवालोंकी या शर्तबन्द कुली-प्रथाके चंगुलमें फँसकर बहुतेरी लड़कियाँ और मज़दूरनियाँ समुद्र पार पहुँच गई हैं। डिपोवालोंने बड़ा जाल रच रक्खा था। शहरमें एक प्रधान और तीन चार छोटे २ अड्डे तो थे ही। पर इसके साथ ही साथ बहुतेरे बहकानेवाले नौकर भी थे। इनमें कुछ स्त्रियाँ भी थीं जो धनके लालचमें या घरमें कलह होनेके कारण चट ही इन लोगोंकी चिकनी चुपड़ी बातोंमें फँसकर बाहर भेज दी जाती थीं। अधिकांश तो घरसे लड़कर ही चली जाती थीं।

समयकी विपरीतताके कारण लोगोंका सदाचार भी बिगड़ने लगा है। दस पन्द्रह बरस पहलेतक भी लोग अपनी कुल मर्यादा या बड़ोंका विशेष ध्यान रखते थे, पर अब इस पवित्रभावका लोप हो रहा है। अच्छे अच्छे पण्डे और घाटिये लोग यहाँतक कि बहुतेरे अमीर लोग सुन्दरी युवती मज़दूरनियोंको रखनीके तरह रखते हैं। ऊपरसे तो यही मालूम होता है कि वह उनके घरका काम करती हैं पर वास्तवमें वह वेश्याका काम करती हैं। इस प्रकार पुरुषको भी अधिक व्यय नहीं करना पड़ता और स्त्रीको भी अच्छी आमदनी होती है। बहुतसी दुश्चरित्रा मज़दूरनियाँ खुल्लमखुल्ला वेश्यायें बन बैठती हैं और दो चार आनेके लिए अपने तनको बेंचती हैं। इस मार्गमें आजकल बहुतसी युवती मज़दूरनियाँ अपना जीवन बिताती हैं।

साधारण मज़दूरनीका ख़र्च अधिक नहीं होता। यदि उसके स्वामी और लड़के हुए तो महीनेमें सबकी मिलाकर तीस पैंतीस रुपया आमदनी हो जाती है। खानेको ये लोग रूखा सूखा अन्न खाते हैं जो यह जानकर आश्चर्य हो सकता

है कि इन्हें सदा औरोंसे सस्ता ही मिलता है। कपड़े भी ये लोग बहुत कम पहिनते हैं और स्त्रियोंको फटी धोतियाँ सीकर पहननेमें कोई सङ्कोच नहीं होता। घी, दूधका सेवन ये लोग प्रायः नहीं करते, पर नित्य अधिक शारीरिक परिश्रम करनेके कारण उनके बिना भी ये हृष्ट पुष्ट रहते हैं।

यदि मज़दूरनी अकेली हुई तो उसका ख़र्च बहुत कम होता है। खानेको प्रायः एक समय मालिकके यहाँसे मिल ही जाता है और सालमें एक बार धोती आदि कपड़ा भी मिल जाता है जिससे अन्न वस्त्रमें बहुत कम ख़र्च होता है। मुख्य ख़र्च किराये और तेल-बत्तीमें होता है। ग़रीब मज़दूरनियाँ प्रायः कई जगह काम करती हैं जिसमें साधारणतः उनका गुज़र अच्छी तरह हो जाता है।

१०.

नौकर

आजकल प्रायः नौकरोंका अभाव सा हो रहा है। अधिक दाम देनेपर और बहुत खोज करनेपर भी नौकर नहीं मिलते और यदि मिलते भी हैं तो ज़रा ज़रासी बातोंमें मालिकसे लड़कर नौकरी छोड़नेको तैयार रहते हैं। अब विचार करना चाहिए कि इसका कारण क्या है। आजकल नौकरोंके लिए बहुतसे द्वार ऐसे खुल गए हैं जहाँ (१) अधिक आमदनी मिलती है, या जहाँ (२) वह मेहनतके अनुसार न्यूनाधिक

वेतन कमा सकते हैं, या जहाँ, (३) उनको ऊपरकी आमदनी या इनाम भी बहुत कुछ मिल जाता है।

इसके पहले कि इन तीन कारणोंपर विशेष रूपसे विचार किया जावे आम तौरपर नौकरोंके भाव और चालमें भेदके बारेमें कुछ कहना अनावश्यक न होगा। अधिकतर नौकरोंमें कहार जातिके लोग विशेषतासे पाये जावेंगे। लगभग २० या ३० वर्ष पूर्व ये लोग मालिककी धोती धोने तथा उनका बचा हुआ भोजन खानेमें संकोच नहीं करते थे, पर अब तो ये लोग इन दोनों कामोंको घृणित समझने लगे हैं और करनेसे इन्कार करते हैं। इसके कई कारण मालूम होते हैं। इनकी आमदनी तो अधिक होती है, पर ख़र्च बहुत कम, क्योंकि ये सादा और रूखा सूखा भोजन करते हैं और मोटा कपड़ा पहिनते हैं। इससे इनमेंसे बहुतसे रुपयेवाले हो गए हैं और अपनेको उच्चजातिके वंशज कहलाना चाहते हैं। इनके समान कई अन्य जातियाँ जनेऊ धारण करके अपनेको ब्राह्मण या क्षत्रिय साबित करना चाहती हैं। एक कारण और भी हो सकता है। इन लोगोंमें जो लोग शिक्षा पाकर डिप्टी कलक्टरी, हेडक्लार्की या बाबूगिरीतक पहुँच गए हैं वे अपने सम्बन्धियोंको ऊँचे दिमाग़वाला बना देते हैं। जहाँतक मालूम होता है ये लोग धोती धोना आदि इस वास्ते नहीं छोड़ते कि ये बातें धर्मवर्जित हैं, पर इस वास्ते, कि ऐसा करनेसे वे तुच्छ और परतन्त्रसे गिने जायँगे और उन्हें मालिकके आगे विशेष नम्र रहना पड़ेगा। आज कलके स्वतन्त्रताके भावके अनुसार ये मालिकके सहायक कहलाये जाना चाहते हैं न कि सेवक या दास। आज कल अपने नौकरसे ज़रा भी कड़ी जबानसे बोलिए कि वह नौकरी छोड़नेपर उतारू हो जायगा क्योंकि

वह जानता है कि नौकरोंकी माँग चारों ओर है और वह रेल बन जानेके कारण थोड़े ख़र्चमें बम्बई कलकत्ता आदि नगरोंमें जाकर खूब कमा सकता है।

अब हमें ऊपर कहे हुए तीन कारणोंपर ध्यान देना चाहिए। पहला कारण यह बतलाया गया था कि अधिक वेतनके द्वार खुल गए हैं। समाजमें तीन प्रकारके लोग माने जा सकते हैं जैसे अमीर, मध्यम श्रेणीके, और ग़रीब। इनमें ग़रीब तो नौकर रखते ही नहीं और अमीरोंको अब भी अधिक वेतनपर नौकर मिल ही जाते हैं। उनका काम नहीं रुकता क्योंकि उनके पास आवश्यकतानुसार व्यय करनेके लिए धनकी कमी नहीं है। अगर कष्ट होता है तो मध्यम श्रेणीके लोगोंको क्योंकि उनको ऊपरसे समाजमें अपनेको अमीर सा दिखलाना पड़ता है और भीतरसे आमदनी कम होनेसे खर्च हाथ समेटकर करना पड़ता है। पचासों बरससे मध्यम श्रेणीके बहुत से लोगोंकी आमदनी या वेतन एकसा चला आता है, पर चीज़ोंके दाम कई गुने बढ़ गए हैं, इससे उन्हें इज़्ज़तके ख़्यालसे पूर्ववत् नौकर तो रखना पड़ता है, पर भोजन वस्त्र इत्यादि अत्यावश्यक ख़र्चोंसे इतना कम धन बचता है कि वे नौकरोंको अन्य स्थानोंके बराबर अधिक वेतन नहीं दे सकते।

(१) अब देखना चाहिए कि अधिक वेतनके कौनसे स्थान हैं जिनके कारण नौकर नहीं मिलते। केवल इस नगरका विचार करनेसे कई कारण मालूम होते हैं। पहले तो बहुतसे मज़दूर पेसराज़ी या मकान बनानेके काममें लग जाते हैं। इस काममें किसी विशेष शिक्षाकी आवश्यकता नहीं और मज़दूरी बहुत मिलती है। इधर आठ दस बरसके बीचहीमें

मज़दूरी तिगुनी हो गई है। पहले चार आना रोज़ पानेवाले-को अब बारह आना रोज़ मिलता है। अब सोचिये कि जो लोग पहले समयमें जब कि चीज़ें भी सस्ती थीं आठ रुपये महीनेमें नौकर रख सकते थे, क्या वे इस महंगीके समय पचीस रुपया महीना दे सकेंगे। यहाँपर एक बात कह देना अत्यावश्यक है कि नौकर शब्दसे हमारा मतलब पहरेदार या जमादार नहीं क्योंकि इन स्थानोंपर ब्राह्मण क्षत्रिय भी पाये जाते हैं जिनका अभाव इतर जातिकी अपेक्षा कम है। सब नौकरी पेसराजीमें नहीं जाते क्योंकि बहुतसे अपनेको इस कामके लिए कमजोर या इज़्ज़तदार समझते हैं और १२ या १५ रुपयेकी नौकरी कर लेते हैं। और सब पेसराजोंको बारह आना रोज नहीं मिलता। इतना तो बरसोंके अनुभवी सरदारोंको ही मिलता है। तब भी मकानों-के अधिक बननेके कारण साधारण श्रेणीके मजदूर को १५ रुपया महीनेसे कमकी आमदनी नहीं होती।

कुछ मज़दूर अधिक वेतनकी आशासे डीपोवालोंके जाल-में फँसकर फ़ीजी, जमायका, ट्रिनिडाड इत्यादि उपनिवेशोंमें जाते थे और लोगोंको विश्वास है कि अब भी किसी न किसी तरह जाही रहे हैं।

पर सबसे बड़ा कारण इन छः बर्षोंमें यह हुआ कि लड़ाई पर जानेके लिए रंगरूटोंमें भरती होकर बहुतसे मज़दूर सेवक दल (Labour Corps) में या सिपाहीगिरीमें चले गये। वहाँ इनको अच्छेसे अच्छा भोजन खानेको मिलता है और रोबदार वस्त्र आदि पहरनेको मिलते हैं और ऊपरसे जेब खर्च भी मिलता है। तिसपर भी काम कम करना पड़ता है और

प्रभुत्वके साथ जीवन बीतता है। इस कारण नौकरोंका सहसा अकालसा पड़ गया है।

इस शहरमें अधिक वेतनका एक द्वार और भी है। काशीमें मरनेसे हिन्दू लोगोंका विश्वास है कि मोक्ष प्राप्त होता है और पुनर्जन्म नहीं होता इससे बहुतेरे मारवाड़ी और बंगाली धनिक लोग वृद्धावस्थामें काशीवासके लिए आकर रहते हैं। बहुतसे तो अपने कुटुम्ब सहित यहीं बस जाते हैं। कलकत्ते आदि बड़े शहरोंमें ये लोग अपने नौकरोंको अधिक वेतन देते थे क्योंकि वहाँ नौकर कम मिलते थे। यहाँ भी वे लोग ज़रा भी नौकरोंकी तकलीफ़ होनेसे कलकत्तेके अनुसार वेतन बढ़ानेको राज़ी हो जाते हैं। इससे उन्हें तो नौकर मिल जाते हैं पर इस शहरके मध्यम श्रेणीके लोगोंके यहाँ वे पुराने कम वेतनपर काम करना स्वीकार नहीं करते।

(२) दूसरा कारण जो ऊपर लिखा गया है वह यह है कि नौकरोंको बहुतसे स्थान ऐसे मिलने लगे हैं जहाँ मेहनतके अनुसार मज़दूरी मिलती है अर्थात् उनकी आमदनी उन्हींपर निर्भर होती है मासिक वेतनकी नाई बंधी नहीं होती। या थोड़ीसी मेहनतके लिए अधिक मज़दूरी मिलती है।

रेलकी सुगमताके कारण इस प्रान्त और अधिकतर इस ज़िलेसे नौकरी करनेवाले लोग कलकत्ते जाते हैं और वहाँ डाक, जेटी इत्यादिपर या मिलोंमें काम करते हैं जहाँ पर रातको काम करनेका अलग सुयोग मिल जाता है और मज़दूरी भी अधिक मिलती है।

जो बाहर नहीं जा सकते उनमेंसे कुछ रेलवे स्टेशनोंपर कुलीका काम करने लगते हैं। वहाँपर वे लोग एका कर लेते हैं कि चाहे रेलवेकी दर कुछ हो पर, हम इतनी ही मज़दूरी

लेंगे और फ़लाने कुलीके सिवाय दूसरा एक कम्पार्टमेन्टके मुसाफ़िरोंका असबाब न उठावे। अगर बेचारे मुसाफिरके पास असबाब अधिक हुआ और वह अकेला हुआ तो ये लोग उसे मनमाना सताते हैं। स्टेशनके बाबू और पुलीस इनके मित्र होते हैं इससे कोई इनका कुछ कर नहीं सकता। अमीर लोग तो कुलियोंको मुँहमाँगा दे देते हैं और उन्हें इस प्रकारका कष्ट यथार्थमें मालूम ही नहीं होता, पर बेचारे गरीब मुसाफ़िर बेहद सताये जाते हैं। बड़े स्टेशनोंपर हर एक कुलीको दो एक रुपया रोज़ तो आसानोसे मिल जाता है और काम केवल ५ या ६ गाड़ियोंके समय थोड़ी देर ही करना पड़ता है। इसी कारणसे कुलियोंकी संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती ही जाती है।

परन्तु अधिकांश मज़दूर जो ज़िलेके बाहर नहीं जाते वे शहरमें मोटिया या बोझा ढोनेका काम करते हैं। इसमें भी कुलियोंकी तरह माल थोड़ी दूर ले जानेपर ही अच्छी मज़दूरी मिल जाती है। ये लोग प्रायः रुपया बारह आना आसानीसे पा जाते हैं और स्वतन्त्र रहते हैं किसीके नौकर नहीं। लेकिन ऐसा अवस्थाओंमें एक बातकी असुविधा होती है। यदि ये संयोगवश बीमार पड़ गए या इन्हें किसी कारण काम न मिला तो भूखों मरना पड़ता है। इस प्रकारका काम आकाशवृत्ति कहा जा सकता है। कुछ निश्चय नहीं रहता कि दिन कैसे बीतेगा। आमदनी भी अनिश्चित रहती है।

(३) तीसरा काम जिसमें बहुतसे नौकरी करनेवाले लग जाते हैं वह चपारसी-गिरी या बयरागिरी है। इनमेंसे कुछ तो साहबोंके बँगलों पर, कुछ कचहरियोंमें और बाकी अन्य दफ़्तरों-में काम करते हैं। कहनेको तो इन पदोंपर तनख़्वाह बहुत कम

दी जाती है यहाँतक कि चार पाँच रुपया महीनातक पहुँच जाती है जिसपर आजकलकी मंहगीमें एक गृहस्थ क्या, एक व्यक्तिका भी निर्वाह होना असंभव है। पर यथार्थमें इन पदोंकी आय तीस रुपया महीनेतक होती है। इस आयका अधिकांश इनामरूपमें मिलता है। प्रायः जितने साहब यहां मिलते हैं उनमें विशेषकर सरकारी ऊँचे अफ़सर ही होते हैं जिनसे लोगोंको एक न एक कामके लिए मिलना होता ही रहता है। कोई खिताबके लिए दौड़ लगाता है तो कोई डिप्टी कलक्टरीके लिए हाज़री देता है। साहबोंसे मिलनेके पूर्व उनके द्वारपाल दरबान और चपरासियोंकी पूजा करना पड़ता है। विना इनामके ये बात भी नहीं करते। घंटों बैठाकर आसरा दिखलाते हैं और अन्तको कह देते हैं कि साहब आज किसीसे न मिलेंगे। कभी कभी इनाम न मिलनेकी कसर निकालनेके लिए साहबसे बात बातके लिए शिकायत भी कर देते हैं अतः इन्हें अवश्य कुछ न कुछ प्रत्येक आगन्तुकसे मिल ही जाता है। तिसपर भी ये लोग चवन्नी अठन्नीकी दक्षिणा तो छूते भी नहीं, रुपयेसे कम देनेवालेका तिरस्कार कर बैठते हैं। इस प्रकार रोज कमसे कम आठ दस रुपये तो मिल ही जाते हैं जो आपसमें बँट जाते हैं। जो लोग प्रत्येक भेटके समय नहीं देते या रोज़के आने जानेवाले होते है उनसे सब बकाया दशमी, दिवाली आदिपर तेहवारीके नामसे वसूल किया जाता है।

कचहरियों और दफ़रोंमें भी इनामके नामपर घूसकी प्रथा प्रचलित है। ज़रा ज़रा सी बातपर इनका दस्तूर और इनका हक़ चुकाना पड़ता है। न दिया जाय तो ये यमदूत घन्टों दिक करते हैं और तरह तरहके कष्ट देते हैं। मुंशी

आदि सबको हिस्सा मिलता है इससे वे लोग भी तंग करनेमें अपना हिस्सा ले लेते हैं। यदि चपरासी महाशयकी मुट्ठी गरम न हुई तो इशारा पाते ही मुंशीजी या बाबू साहब कहते हैं कि ठहरो, तुम्हारा काम थोड़ी देरमें होगा, फुरसत नहीं। यदि कुछ देर बाद बेचारे उस व्यक्तिने फिरसे विनयकी और कहा कि 'अब तो खाली हैं, काम कर दीजिए' तो जवाब मिलता है कि देखते नहीं अन्धे हो, हम सरकारी काम कर रहे हैं या अपना। यदि कहा गया कि आप घूस देने वालेका काम पहिले करते हैं तो उत्तर मिलता है 'जाओ जो शिकायत करते बने, करो। चले हैं क़ानून छाँटने।'

इन तकलीफ़ोंसे विवश होकर और समयका मूल्य विचार कर इनाम झख मार कर चुकाया ही जाता है। वर्तमान राज्य-प्रणालीमें ज़रासे कामके लिए यहाँ वहाँ सैकड़ों जगह लिखाना, नकल लेना आदि आवश्यक पड़ता है। जिसका दाँव आया उसीने गला दबाकर कुछ इनाम वसूल किया। इससे बचना असम्भव हो गया है! इन चपरासियोंसे बढ़कर क्रूर और स्वार्थी शायद ही कोई मिले।

इस प्रकारकी आमदनीके सामने भला बँधुएकी तरह आठ दस रुपयेपर नौकरी करना कोई कैसे पसन्द करेगा। इन्हीं सब कारणोंसे नौकर मुश्किलसे मिलते हैं, और मिलते भी हैं, वे प्रायः बड़े ही स्वतन्त्र भावके होते हैं।

११.

चमाइन

शहरके प्रत्येक महल्लेमें एक ख़ास चमाइन सवेरे और तीसरे पहर झाड़ू देती है। चमाइनोंकी एक पंचायत है जिससे यह निश्चय हो गया है कि कौन सा महल्ला किस चमाइनका है। एक चमाइनके महल्लेमें दूसरी आकर काम नहीं कर सकती, क्योंकि हरेक महल्ला एक प्रकारकी यजमानी माना जाता है। महल्लेकी चमाइनको प्रायः हरेक मकानसे अमावस और पूनमको एक एक पैसा मिलता है। इस प्रकार उसे हरेक घरसे दो पैसे महीनेमें मिलते हैं। अब यदि महल्लेमें पचासके करीब मकान मान लिये जावें तो तो इस हिसाबसे इन्हें तीन चार रुपये महीनेमें नक़द मिलते हैं। इसके सिवाय यदि कहीं भोज आदि हुआ तो वहाँ की जूठी पत्तल महल्लेकी चमाइनके सिवाय और कोई नहीं ले सकता। तेहवारोंपर चमाइनोंको खानेके लिए पका हुआ, या सूखा अन्न दिया जाता है। सालमें इन्हें एक पुरानी धोती भी प्रायः हरेक सम्पन्न गृहस्थके घरसे मिल जाती है। जब किसीके घर सन्तानोत्पत्ति होती है तो चमाइन ही उसका नार काटती है और इसके लिए उसे पाँच आनेसे लेकर पाँच रुपयेतक मिलते हैं और अन्न, वस्त्राभरण आदि भी योग्यतानुसार दिये जाते हैं।

इससे यह विदित हो गया होगा कि चमाइनका अपने महल्लेपर कितना अधिकार होता है और उसे क्या आमदनी होती है। महल्ला उसकी जमींदारीकी तरह होता है और उसको

यह इच्छानुसार दूसरी चमाइनके हाथ रहन या बय कर सकती है। यदि संयोगवश नियमके विरुद्ध कोई चमाइन दूसरेके महालमें जाकर झाड़ू देकर या और किसी तरह कुछ पैदा करना चाहती है। तो पंचायतसे उसे दण्ड दिया जाता है और यह जानकर हर्ष होगा कि ये लोग पंचायतकी आज्ञायें विना किसी विरोधके मान लेती हैं।

अब म्युनिसिपैलिटी और चमाइनके सम्बन्धपर विचार करना चाहिए। कुछ महालोंकी चमाइनोंको म्युनिसिपैलिटी-से तीन या चार रुपया महीना मिलता है, पर अन्य चमाइनों-को जिनकी भारी यजमानी होती है कुछ नहीं मिलता। म्युनिसिपैलिटीका दारोग़ा इनपर अपना अधिकार रखता है और मुफ़्तमें सफ़ाई कराता है। मालूम होता है कि म्युनि-सिपैलिटीका यह विचार है कि चमाइनको बिना कुछ दिये हुए कुछ दारोग़ाओंको निगरानीके लिए रखकर सफ़ाई-के ख़र्चसे बचत करे। पर इस प्रकारके प्रबन्धसे हानिकी सम्भावना है। क्योंकि यदि किसी दिन चमाइन न आई तो सफ़ाई ही न होगी और दारोग़ा उसे ज़बरदस्ती नहीं ला सकता और वह कह सकती है कि हम नहीं काम करते तो हमारी यजमानीमें नुकसान होगा तुम्हारा क्या होगा। इस हालतमें अकसर महल्ले कई दिनोंतक गन्दे रहते हैं। इसके अतिरिक्त एक बात और है कि यदि किसी मकानके लोग इतने ग़रीब हैं कि चमाइनको भोजन आदि नहीं दे सकते तो वह उनके दरवाज़ेपर कूड़ा करकट जमा रहने देती है जिससे आसपासकी हवा ख़राब हो जाती है। म्युनिसिपैलिटीको सफ़ाईके लिए कुछ नौकर रखना बड़ा आवश्यक है। महल्लेकी चमाइनको अपना नाम और मुहल्ला म्युनिसिपैलिटीके वार्डोंकी

चौकीपर लिखाना पड़ता है और चार आना देना पड़ता है सो मालूम नहीं कि म्युनिसिपैलिटीको मिलता है या मुंशीजीकी जेबमें जाता है। वार्डके जमादारको भी चमाइनें दो आना महीना नज़र करती हैं।

यदि किसी समय कोई व्यभिचारजन्य बालक पैदा होते ही फेंका हुआ पाया जाता है तो चमाइनोंसे जाँच होती है क्योंकि प्रायः चमाइनोंको मालूम रहता है कि अमुक स्त्रीको लड़का होनेवाला है।

चमाइनकी दशा ख़राब नहीं मालूम होती, पर सफ़ाईका अभाव इन लोगोंमें भी पाया जाता है। ये लोग भी भूतप्रेत विशेष मानती हैं और अपनेको हिन्दूधर्मकी अनुयायिनी कहती हैं।

१२.

डोम, चमार आदि

डोम, चमार मेहतर आदिका मुख्य काम तो सफ़ाई करनेका है जैसे झाड़ू देना, मैला साफ़ करना आदि। इनको म्युनिसिपैलिटीसे तीन चार रुपये महीना मिलता है और सबेरे और शाम सड़कोंपर सफ़ाई रखना होता है। मेहतर लोग सड़कोंके अतिरिक्त गलियोंमें भी सफ़ाई करते हैं। लेकिन गलियोंकी सफ़ाई चमाइनोंद्वारा कराई जाती है जिसका व्योरा आगे लिखा जायगा।

डोम, चमार आदि सबेरे शाम काम करके दिनभर खाली रहते हैं और इस समयमें ये लोग अपना और काम

करते हैं। चमार लोग शहरके मरे हुए जानवरोंको बाहर ले जाकर उनका चमड़ा निकालते हैं और उसके जूते तय्यार करते हैं। इस सुयोगके लिए जिससे इनको चमड़ा मुफ़्तमें ही मिल जाता है, शहरकी म्युनिसिपैलिटीको कुछ बँधा हुआ कर देना पड़ता है। पर इन लोगोंको जो गाय आदि हिन्दुओं-के घर मरती थी बड़ी मुश्किलसे मिलती थी, क्योंकि हिन्दू लोग इन मृत शरीरोंको गंगामें बहा देना पुण्य समझते हैं। इसपर चमारोंने दरख़ास्त दी, कि जानवर तो हमें मिलते ही नहीं फिर कर हमसे क्यों लिया जाताहै। इसपर उनका कर तो कम कर दिया गया, पर यह क़ायदा बना दिया गया कि कोई गाय बैल या दूसरा जानवर विना आज्ञाके न बहाया जावे और आज्ञा मिलनेपर भी उसके खालका दाम म्युनिसिपैलिटी-को मिल जानेपर बहाया जावे। अस्तु, चमार लोग फ़ुरसत पानेपर जूता तैयार करते हैं और पुराने जूतोंकी मरम्मत करते हैं। डोम या धरकार लोग सूप, चलनी, पंखा, चिक आदि बनाते हैं। बहुतसे चमार झाड़ू देनेके कामके अतिरिक्त नलोंकी कीच निकालनेका काम भी करते हैं।

बहुतसे डोम लोग कुछ पैसा पास होनेपर ख़ानसामा या बयरा बन जाते हैं और कुछ दरजीका काम करने लगते हैं।

साधारण कामोंके सिवाय डोम चमारोंको सहा-लग या शादी बरातके दिनोंमें बड़ी आमदनी होती है। सहा-लग के दिन प्रायः बैसाखसे असाढ़ और अगहनसे फागुनतक होनेवाली बरातोंमें फुलवारी, खिलौने, महताबी ओर गैसके लैम्पोंको उठानेका काम भी येही लोग करते हैं। इन कामोंमें प्रायः लड़के, लड़कियाँ और स्त्रियाँ भाग लेती हैं और आमदनी भी इन्हें चार छः आने रोज़से कमकी नहीं होती, पर इनका सबसे मुख्य

काम बाजा बजानेका है जो मर्द लोग ही करते हैं। बाजे प्रायः चार तरहके होते हैं जैसे शहनाई, ताशा, बैण्ड और बैगपाइप। शहनाई और ताशेवालोंको तो बँधा हुआ दाम मिलता है, पर अंगरेजी बाजेवाले तो कभी कभी अन्धाधुन्ध दाम बढ़ा देते हैं, क्योंकि इनके थोड़ेसे गोल होते हैं और आजकल अँगरेज़ी बाजोंकी प्रथा बहुत चल गई है। इन लोगोंको दाम घंटे या रातके हिसाबसे दिया जाता है। इनके वेतनकी दर चार या पाँच रुपये प्रति बरातसे लेकर बीस पचीस रुपयोंतक है। इस प्रकार सहा-लगके दिनोंमें प्रत्येक बाजेवालेको लगभग एक रुपया रोज़ या उसके लग भग मिल जाता है। बहुधा जिस बरातमें ये जाते हैं वहाँसे इन्हें भोजन भी मिलता है। इस प्रकार रुपया इनकी ख़ासी बचतमें रहता है। बाजोंमें शहनाई-को छोड़कर शेष सब बाजे बेसुरे और बेतालके होते हैं और केवल भड़भड़ शब्दमात्र कहे जा सकते हैं। शहनाईवालोंमें अभी भी बहुत कुछ हुनर है। बहुतसे शहनाईवालोंको तो सालभर काम मिलता है, क्योंकि बहुतसे घाटोंपर या मन्दिरोंमें राजाओंकी ओरसे प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, और सायंकाल शहनाई बजती है। यहाँसे शहनाईवालोंको पाँछ छः या इससे अधिक मासिक वेतन मिलता है। डुगडुगिया पीटनेका काम भी सालभर लगा रहता है और इस काममें आठ आनेसे रुपये रोज़की मज़दूरी मिलती है।

अब ज़रा इन लोगोंके घरकी अवस्था देखनी चाहिए। वास्तवमें इन्हें भोजनका कष्ट तो नहीं है, पर जीवन इनका अत्यन्त कलहमय होता है। इनमें शराब और ताड़ीकी लत सबसे बड़ा दुर्गुण है। व्यभिचार भी इनमें बहुत बढ़ा चढ़ा है। सफ़ाई तो इनके घरोंमें कहीं भाग्य हीसे मिलेगी। गन्देसे

गन्दे बिछौनेपर ये सोते हैं और कभी कभी बरातों या भोजों-की पत्तलोंका फेंका हुआ सड़ा अन्न भी खानेसे नहीं हिचकते। ये लोग बरतन प्रायः मट्टीके ही बरतते हैं। इस प्रकारकी गन्दगीका फल यह होता है कि जब प्लेग महामारी आदि फैलती हैं तो ये लोग ही बहुतायतसे मरते हैं। इन्फ्लुएंज़ामें भी इनमेंसे सैकड़ों ठंढसे मरते हैं। यथार्थमें इनका धर्म कोई भी नहीं, क्योंकि यदि कम्बल या रुपयेका लालच मिला तो बिना हिचकके ईसाई हो जाते हैं और फिर बिना संकोचके आर्य-समाज या अन्य मतोंमें मिल जाते हैं। इन लोगोंमें डाइन, चुड़ैल, भूत, प्रेत, टोना, टोटका आदिकी प्रथा बहुत प्रचलित है।

शब्दानुक्रमणी

—:*०*:—

संकेत—न० = नगर, जि० = जिला, प्रा० = प्रान्त, दे० = देश, उप० = उपनिवेश, प्र० पु० = प्रसिद्धपुरुष, दे० रि० देशी रियासत, ध० पु० = धर्मपुस्तक।